www.emanjari.com

मंजरी

स्त्री के मन की

RNI Title Code: BIHBIL02442

अंक 30

वर्ष 2025

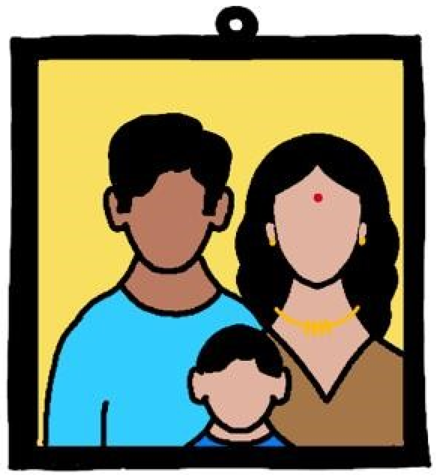

मेरे निर्णय मेरा जीवन

बदलते रिश्ते और टूटता परिवार

BIHAR TOURISM
Blissful Bihar

VISIT BIHAR

The place of Enlightenment and Wisdom. A world famous UNESCO heritage site Mahabodhi Temple.

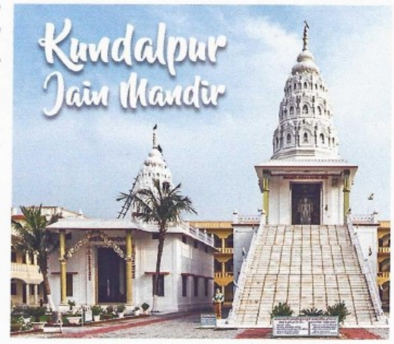

Kundalpur Jain Mandir holds both spiritual and historical significance as it is believed to be the birthplace of Lord Mahavira.

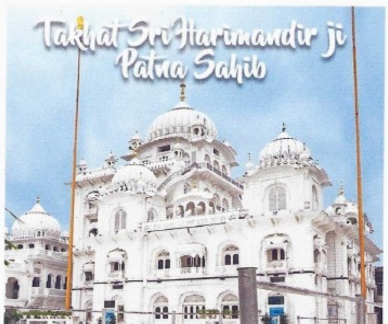

A sacred place built to commemorate the birthplace of Shri Guru Gobind Singh ji Maharaj, the 10th Guru of Sikhs.

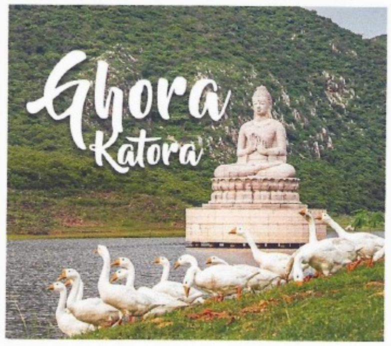

A picturesque natural lake with lush green surroundings.

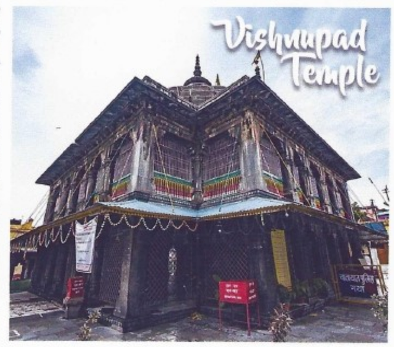

One of the oldest and most prominent Hindu temples dedicated to Lord Vishnu where pilgrims perform 'Pind Daan' ritual for their ancestors.

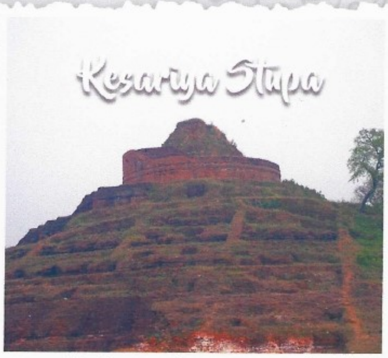

Situated in the East Champaran Kesariya Stupa is the Wolrd largest Stupa among all the buddhist stupas.

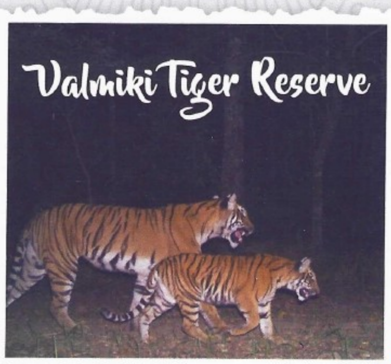

Situated in the West Champaran district of Bihar, the green landscapes with wildlife sightings is a must-visit spot for nature & adventure lovers.

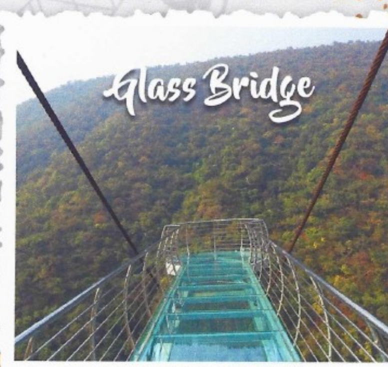

Bihar's first Glass Bridge at Rajgir's Nature Safari offers a breathtaking view of the beautiful surroundings.

Best Places to Visit in Bihar

BIHAR TOURISM
Blissful Bihar

"Bihar, a land of rich cultural and spiritual heritage, offers a blend of history, spirituality, and natural beauty. From the UNESCO World Heritage Site Mahabodhi Temple to the serene Ghora Katora Lake and the wild allure of Valmiki Tiger Reserve, the state is a treasure trove for travelers. Explore timeless temples like Vishnupad Temple, dedicated to Lord Vishnu, and Kundalpur Jain Temple, celebrating Lord Mahavira's birthplace. Don't miss Patna Sahib, the birthplace of Guru Gobind Singh Ji, the 10th Sikh Guru. Bihar invites you on a journey of sacred shrines, scenic landscapes, and unmatched tranquility."

@tourismbihargov

www.tourism.bihar.gov.in

संकल्पना

इक्विटी फाउंडेशन लंबे अरसे से एक वेब पत्रिका शुरू करने के बारे में सोच रहा था। मकसद था महिला और समाज के मुद्दों को शिद्दत से उठाना। जब हमने चीजों को एक साथ कर उसे पत्रिका के रूप में सजाने के बारे में सोचना शुरू किया तो इस क्रम में कई लोगों से जुड़े। हमने महिलाओं को पत्रिका से जोड़ने की कोशिश की। हम दोस्तों से मिले और परिचितों से बात की। महिलाओं के सामाजिक समूहों और शिक्षाविदों के एक साथ जुड़ने के बाद जो स्वरूप सामने आया वह है **'मंजरी'**।

मंजरी यानी कोंपल। शाखों में फूटने वाली नन्ही पत्तियां। नई शाखों का सृजन करने वाले इन कोंपल को कुम्हलाने से बचाना जरूरी है नहीं तो पूरे पेड़ का विस्तार कुंद हो जाएगा। ठीक उसी तरह स्त्री के मन की मंजरी को सहेजने की जरूरत है वरना पेड़रूपी समाज विकृति का शिकार हो जाएगा। हमारा प्रयास इसी मंजरी को पुष्पित पल्लिवत करने का है जो औरत की सोच और उसकी को. शिश को सही दिशा प्रदान कर सके।

मंजरी के सृजन के दौरान पहले तो 10–30 लोगों का एक ढीला–ढाला समूह बना। विचार आते गए। अलग–अलग विषयों और मुद्दों पर। समूह में कुछ अनमनी महिलाएं थीं तो कुछ सहानुभूति दिखाने वाले पुरुष भी। कुछ महज एक या दो बैठकों में शामिल हुए तो कुछ जब मन में आया, आ गए। बाकी बचे लोगों ने 'मंजरी' को मुकाम पर ले जाने का दायित्व अपने कंधों पर लिया। 'मंजरी' का लक्ष्य एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना है जहां बुद्धिजीवियों को उनकी खुराक मिले तो शोधकर्ताओं की जिज्ञासा शांत हो। क्रियान्वयन के लिए बहस और तर्क के रास्ते हमेशा खुले रहें। इक्विटी की लगातार कोशिश रही है शोध और क्रियान्वयन के बीच की दूरी को पाटना। ऐसे में हमारा मानना है कि शोध तब तक अप्रासंगिक हैं जब तक कि इनका लोगों की जिंदगी और उनके क्रियाकलापों से जुड़ाव न हो। ठीक इसी तरह सिविल सोसायटी के तौर पर अगर हम जमीनी सच्चाई से वाकिफ न रहें, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक मूल्यों का समावेश है और जो समाज में रहने वाले लोगों के मूल्यों और उनके चरित्र को आकार देते हैं, तो किसी भी कोशिश का कोई मतलब नहीं रहता है।

'मंजरी' एक उद्यम है, क्रियाशीलता को शोध आधारित रचना और आलोचना के नजरिये से देखने का जो महिला अधिकारों के साथ–साथ जीवन के हर पलू को इंगित करे। नियमित गैर सरकारी संगठनों और अकादमिक तंत्रों से इतर 'मंजरी' राजनीति और आदर्शवादिता को लांघ कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को सांस्कृतिक संवेदनशीलता के आधार पर मापती है। 'मंजरी' उन तमाम कार्यकर्ताओं, विद्वानों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, प्रोफेशनल, गृहणियों और नीति निर्धारकों द्वारा पढ़ी जाएगी जो किसी समस्या के लिए समाधान आधारित नवीन दृष्टि और पृथक सोच रखते हैं। यह पत्रिका अपने पाठकों को जेंडर आधारित मुद्दों को जैविक और सामा. जिक आधार पर परखने की छूट देती है। व्यक्ति और समाज की विचारधारा में जेंडर को लेकर क्या बदलाव आये और उनका क्या असर हुआ, इसकी पूरी पड़ताल करने की आजादी लोगों को होगी। यह पत्रिका एक कोशिश है पड़ताल की प्रवृत्ति को जगाने की ताकि लोग तेजी से बदलते और विविधताओं से भरे समाज में परी क्षमता से काम करने को तैयार हो सकें जिसमें महिलाओं के प्रति भेदभाव भी एक अहम मुद्दा होगा। महिला समानता और अधिकारों पर 'मंजरी' के दखल से उन बेशुमार कार्यकर्ताओं, संगठनों और विद्वजनों को फायदा होगा जो दहेज, यौन प्रताड़ना, महिला अधिकारों, महिला आरक्षण, आर्थिक सुधार और अल्पसंख्यक समुदायों के निजी कानूनों में रुचि रखते हैं।

पत्रिका का मकसद

इक्विटी फांडेशन खुद को सुविधाविहीन महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता से अवगत कराने और समाज में उनके क्रियाशील प्रभुत्व को स्थापित कराने की दिशा में वाहक के तौर पर देखता है। देश के विकास के हर क्षेत्र में महिलाओं की समान भागीदारी की राष्ट्रीय नीति तभी सफल हो पाएगी जब महिलाओं की भूमिका और उनके योगदान को कमतर आंकने वाले संस्थान और विचारों को हतोत्साति किया जाये या उनका पूरी तरह सफाया किया जाय। 'मंजरी' की परिकल्पना समाज और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के जीवन और उनके स्तर को प्रभावित करने वाले विचारों के निर्माण, विकास और उनके प्रसार के लिए की गई है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के परिप्रेक्ष्य में समानता संबंधी मुद्दों को इस प्रकार समग्र रूप में देखने की जरूरत है जो असमानता की अंतरवर्गीय विशेषताओं को जाहिर कर सके। समानता पर आधारित 'मंजरी' के ज्यादातर आलेख भिन्न–भिन्न समूहों को निशाने पर रखते हैं जो कुछ हद तक बेहद जरूरी भी है। इसलिए यह पत्रिका कुछ समूहों के कुछ विशेषाधिकारों के पूर्ण निष्कासन और अंतरवर्गीय दृष्टिकोणों के स्थापन के बीच नियंत्रक की भूमिका में होगी जो नीति निर्धारण और योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान असमानता को उसके तमाम स्वरूपों के साथ सामने रखने में कारगर होगी। ऐसे में इसका मकसद लैंगिक भेदभाव के निर्मूलन की ओर वह विवेचनात्मक चर्चा छेड़ने का है जो वर्तमान परिदृश्य में शोधों का एजेंडा तय कर सके और एक बेहतर वैकल्पिक प्रस्ताव का सृजन कर सके। अब तक यह संगठन कार्यशाला, कांफ्रेंस और अन्य सार्वजनिक आयोजनों के जरिये अपनी प्रतिबद्धता दर्शाता रहा है लेकिन अब इस पत्रिका के माध्यम से यह क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अतिथि लेखकों, जिनमें विद्वजन, अधिवक्ता, सरकार, पत्रकार, फिल्म निर्माता, कवि और सामाजिक कार्यकर्ता हैं, को जोड़ने की कोशिश कर रहा है।

संरक्षण

पद्मश्री स्वर्गीया डा. उषा किरण खान
प्रख्यात लेखिका एवं साहित्यकार

मणिकांत ठाकुर
प्रख्यात पत्रकार

प्रो. भारती एस. कुमार
प्रोफेसर (सेवा.) इतिहास, पटना विवि

डा. रेणु रंजन
प्रोफेसर (सेवा.), समाज शास्त्र पटना विवि

परामर्श

डा. शरद कुमारी
सचिव, बिहार महिला समाज

अंजिता सिन्हा
पत्रकार

डा. मधुरिमा राज
स्वतंत्र लेखिका एवं शोधकर्ता

सुजाता गुप्ता
लेखिका, कवयित्री एवं अनुवादक

संपादकीय

''बिखर रहे चूल्हे सभी, सिमटे आँगन रोज।
नई सदी ये कर रही, जाने कैसी खोज।।''

बर्गेस एवं लॉक के अनुसार, "परिवार व्यक्तियों के उस समूह का नाम है जिसमें वे विवाह, रक्त या दत्तक संबंध से संबंधित होकर एक गृहस्थी का निर्माण करते हैं एवं एक–दूसरे पर स्त्री–पुरुष, माता–पिता, पुत्र–पुत्री, भाई–बहन इत्यादि के रूप में प्रभाव डालते व अंतःक्रिया करते हुए एक सामान्य संस्कृति का निर्माण करते हैं।"

भारतीय समाज की पहचान उसकी पारिवारिक संरचना से रही है। यहाँ संयुक्त परिवार केवल एक साथ रहने की व्यवस्था नहीं बल्कि सहयोग, त्याग और सामूहिकता की जीवनशैली थी। इसमें बुजुर्गों को सम्मान, बच्चों को संस्कार और युवाओं को सहयोग मिलता था। लेकिन समय के साथ परिस्थितियाँ बदलीं। औद्योगिकीकरण और शहरीकरण ने लोगों को गाँव से शहर की ओर खींचा। छोटे घर और व्यस्त जीवनशैली ने संयुक्त परिवारों को कमजोर किया। आर्थिक स्वतंत्रता और व्यक्तिवादी सोच ने भी इस विघटन को बढ़ावा दिया। अब 'मेरे निर्णय मेरा जीवन' जैसी मानसिकता हावी है। इसके अलावा संपत्ति विवाद, पीढ़ियों के बीच टकराव और तकनीक का बढ़ता प्रभाव भी रिश्तों को दूर कर रहा है।

संयुक्त परिवारों के बिखरने से मूल्यों का ह्रास स्पष्ट है। पहले त्याग और सहयोग रिश्तों की नींव थे, आज प्रतिस्पर्धा और स्वार्थ हावी है। बुजुर्ग अकेलेपन और उपेक्षा से जूझ रहे हैं। बच्चों को सामूहिक जीवन की परंपराओं और संस्कारों का अनुभव कम हो रहा है। त्योहार और रीति–रिवाज औपचारिकता बनते जा रहे हैं। रिश्तों में सहानुभूति की जगह लेन–देन का भाव दिखाई देने लगा है।

नारी की स्थिति भी बदल रही है। महिलायें कामकाजी अधिक होती जा रही हैं। परिवार की सेवा की अपेक्षा आर्थिक कार्यों को अधिक महत्व दिया जा रहा है। घर में बच्चा आया के हाथों में है। उसे माँ बाप का प्यार नहीं मिल पाता। इस तरह आधुनिक समय में परिवार संरचात्मक और प्रकार्यात्मक रूप से परिवर्तित हो रहे हैं। दादा दादी की नैतिक कहानियाँ अब नहीं सुनायी देतीं। बच्चे नेट पर उपलब्ध सैकड़ों वीडियो गेम्स में व्यस्त होकर तनावग्रस्त हैं। लोगों ने सोशल मीडिया पर अपना आभासी समाज बना रखा है और यह समाज घर तक आ रहा है।

इस बदलाव के दुष्परिणाम भी सामने हैं। छोटे परिवारों में दंपतियों पर आर्थिक और भावनात्मक बोझ बढ़ता है। मानसिक तनाव और अवसाद जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं। समाज में संवेदनशीलता और आपसी सहयोग कम हो रहा है। निष्कर्षतः संयुक्त परिवारों का टूटना केवल पारिवारिक बदलाव नहीं बल्कि सांस्कृतिक चुनौती भी

मुख्य संपादक

नीना श्रीवास्तव

संपादक

दीपिका झा

शोध

नीना श्रीवास्तव
दीपिका झा

आवरण चित्र

वरिष्ठ अतिथि कलाकार
अनु प्रिया

लोगो डिजाइन

दीया भारद्वाज

प्रबंधन/व्यवस्था

राहुल कुमार
कुमार गौरव

प्रकाशन

इक्विटी फाउंडेशन

संपर्क

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13
फोन : 0612.2270171

ई–मेल
equityasia@gmail.com
वेबसाइट
www.emanjari.com

है। रिश्तों का असली महत्व साथ रहने से नहीं बल्कि संवेदनशीलता और अपनापन बनाए रखने से है। यदि हम सहयोग और सामंजस्य को पुनः जीवन का हिस्सा बना लें तो बिखरते रिश्ते और मूल्य फिर से जुड़ सकते हैं। संयुक्त परिवार के विखंडन से सर्वाधिक हानि बुजुर्गों को ही होती है। आज अधिकांश बुजुर्ग या तो किसी एक कोने में अकेलापन भोग रहे होते हैं या नौकरों के सहारे अपना जीवन काट रहे हैं। क्योंकि बेटों को स्वयं के कार्यों से फुर्सत नहीं है।

फिर भी, समाधान संभव है। संयुक्त परिवार की पुरानी संरचना शायद पूरी तरह लौट न सके लेकिन उसके मूल्यों को फिर से अपनाया जा सकता है। तकनीक के माध्यम से दूर रहकर भी जुड़े रहना, बच्चों को सहयोग और संस्कार की शिक्षा देना और सामाजिक स्तर पर सामूहिकता को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। आधुनिकता और परंपरा के बीच संतुलन बनाकर ही रिश्तों की गहराई और मानवीय मूल्य फिर से जीवित हो सकते हैं।

नीना श्रीवास्तव

अनुक्रम

4

12

10

7

30

अनु प्रिया
(कलाकार/लेखिका)

सुपौल बिहार में जन्मीं अनु प्रिया जी के साठ से अधिक किताबों के आवरण एवं पत्र–पत्रिकाओं में रेखाचित्र प्रकाशित हो चुके हैं। साहित्य अकादमी, राजकमल प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, अल्टरनोट प्रकाशन, अगोर प्रकाशन, प्रकाशन विभाग आदि से किताबों के आवरण पर निरंतर इनके द्वारा बनाये गए चित्र का प्रकाशन होता रहता है।

थीम पेपर

'मेरा परिवार' से 'इट्स माइ फैमिली' तक का सफर

''पिता जी! मेरा दफ्तर खासा दूर पड़ जाता है लिहा. जा मैं ऑफिस के पास एक कमरा लेने का विचार कर रहा हूं, लेकिन मैं वीकेंड पर घर आता–जाता रहूंगा। पिताजी– लेकिन फिर परिवार का क्या होगा। तुम अकेले कैसे रहोगे?''

पिछले कुछ सालों में इस तरह का संवाद शहरी घरों में आम हो गया है, जहाँ मामूली सुविधा के लिए, थोड़ी असुविधा से बचने के लिए लोग परिवार से अलग होने का फैसला कर लेते हैं। भारत में जहां एक परिवार की परिकल्पना एक साथ रहने पर होती थी और उसे हरे–भरे या खुशहाल परिवार की संज्ञा दी जाती थी, वहीं 21वीं शताब्दी में कहीं न कहीं इस भरे–पूरे घर का ढांचा सिमटता नजर आता है। हालांकि भारतीय समाज में पारिवारिक रिश्तों की डोर हमेशा ही बेहद मजबूत मानी जाती रही है। खानदानी रिश्ते, सामाजिक, आर्थिक और

प्रो. नदीम हसनेन

लेखक लखनऊ यूनिवर्सिटी में मानवशास्त्र के पूर्व प्रोफेसर हैं। वो अमेरिका के फुलब्राइट स्कॉलर इन रेजिडेंस हैं और भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद के वरिष्ठ सदस्य हैं।

मनोवैज्ञानिक रूप से लोगों के अंदर सुरक्षा का मजबूत भाव पैदा करते रहे हैं। लोग बड़े गुरूर से कहते हैं कि मैं फलां खानदान से ताल्लुक रखता/रखती हूं। वहीं समाज में लोगों का सामा. जिक दर्जा इस बात से तय होता था कि वो किस परिवार से आते हैं।

भारत के अलग–अलग हिस्सों में परिवार की बनावट और इसके आकार में हमें बहुत विविधताएं देखने को मिलती हैं। किसी भी परिवार के वर्गीकरण की सबसे महत्वपूर्ण कसौटी होती है, शादी का तरीका और परिवार में लोगों के अधिकार। भारत की आजादी के बाद से अब तक अलग–अलग राज्यों में परिवार की संरचना में विविधताएं दिखती हैं। हिमालय की तराई के जौनसर बावर इलाके में यानी देहरादून से लेकर लद्दाख तक हमें तरह–तरह की पारिवारिक संरचनाएं दिखती हैं। इस इलाके में एक

स्त्री और एक पुरुष के वैवाहिक संबंध (मोनोगैमी) वाले परिवार, बहुपत्नी प्रथा (पॉलीगेमी) और बहुपति प्रथा (पोलिएंड्री) आम थे। हालांकि अब इनकी तादाद कम हो रही है और अब यहां समाज के ज्यादातर तबकों में मोनोगैमी ही आम है। वहीं पूर्वोत्तर राज्य मेघालय के गारो और खासी समुदाय में मातृसत्तात्मक परिवार देखने को मिलते हैं। इन समुदायों में पारिवारिक संपत्ति मां से बेटी को विरासत में मिलती है और पति अपनी पत्नियों के घर में रहते हैं।

इसी तरह, दक्षिणी राज्य केरल के नायर समुदाय में भी कुछ हद तक महिलाओं को परिवार में ज्यादा अधिकार हासिल होते हैं। ये भी एक हकीकत है कि महिलाओं की अगुवाई वाले इन समुदायों में परिवार के मुखिया के तौर पर पुरुष के होने का चलन बढ़ रहा है। देश के बहुत से हिस्सों में संयुक्त परिवारों का चलन है, जिन्हें, आम तौर पर हिंदू संयुक्त परिवार कहा जाता है। हिंदुओं की ज्यादातर आबादी के बीच हम ऐसे ही खानदान देखते हैं। हालांकि, मुस्लिम, सिख और अन्य समुदायों के बीच भी बड़े और संयुक्त कुनबे देखने को मिलते हैं, भले ही इनकी बनावट या रंग–रूप अलग हों। खास तौर से खेती–बाड़ी करने वाले समुदायों के बीच बड़े और संयुक्त परिवारों का चलन आम है ताकि सब लोग मिल–जुलकर काम करें। लेकिन, हिंदू संयुक्त परिवारों के मुकाबले अन्य समुदायों में ऐसे कुनबों को वो दर्जा हासिल नहीं है जो हिंदुओं के बीच है। संयुक्त परिवारों में कुल देवता के लिए भोग को साझा रसोई में पकाया जाता है। हिंदू विवाह अधिनियम 1955 के मुताबिक, हिंदू अविभाजित परिवार को एक कानूनी मान्यता भी मिली हुई है।

इस आधार पर हिंदू संयुक्त परिवारों को इनकम टैक्स से भी राहत मिलती है। इन्हीं वजहों से हम ये कह सकते हैं कि संयुक्त परिवारों की जो मान्यताएं और अहमियत हिंदुओं के बीच हैं, वो गैर हिंदू समुदायों के संयुक्त परिवारों को हासिल नहीं हैं। ऐसे संयुक्त परिवारों की खूबी ये होती है कि इनमें तीन या इससे भी ज्यादा पीढ़ियों के लोग साथ रहते हैं। उनकी संपत्तियां साझा होती हैं। रसोई एक साथ होती है और खानदान के मुखिया आम तौर पर मर्द होते हैं, जिन्हें परिवार का कर्ताधर्ता कहा जाता है।

भारत के खेतिहर समुदाय के बीच संयुक्त परिवार का उदय कब हुआ, इसका कोई सटीक वक्त तो नहीं बताया जा सकता। ये कहना ही बेहतर होगा कि जब से भारत में संगठित रूप से खेती करने का चलन शुरू हुआ, उसके बाद से ही यहां के खेतिहर समुदायों के बीच संयुक्त परिवारों की संरचना का उदय हुआ और समय के साथ ये और विकसित होती गईं। खेतिहर समुदायों के बीच ऐसे परिवारों का विकास उस वक्त हुआ था जब खेती के लिए आधुनिक उपकरण इजाद नहीं हुए थे। ऐसे में बड़े परिवार खेती में बहुत मददगार होते थे क्योंकि खेती की जरूरत के वक्त मेहनत के लिए तमाम हाथ इकट्ठे हो जाते थे और अन्य संसाधनों को भी आपस में साझा किया जाता था। लेकिन, वक्त गुजरने के साथ–साथ समाज में आए बदलावों ने ऐसे कुनबों की बनावट पर भी असर डाला। संयुक्त परिवार बिखरने लगे, ताकि बदले हुए हालात और चुनौतियों का सामना कर सकें। आपको बिमल रॉय की मशहूर फिल्म दो बीघा जमीन याद होगी, जिसमें एक किसान की भूमिका निभा रहे बलराज साहनी, साहूकार से अपनी जमीन छुड़ाने के लिए शहर जाते हैं और गाड़ी खींचने का काम करते हैं। वो जी–तोड़ मेहनत करते हैं और जब पैसे बचाकर अपनी गिरवी जमीन को छुड़ाने के लिए गांव लौटते हैं तो पता चलता है कि उनकी जमीन पर तो एक कारखाना खड़ा हो गया है। वर्ष 1990 के बाद भारत में शहरीकरण और औद्योगीकरण का असर संयुक्त परिवारों पर भी पड़ा है। हमने इसके तमाम पहलू फिल्मों में भी देखे हैं। मजे की बात ये है कि बड़े खानदान वाले परिवार तो कमोबेश फिल्मी दुनिया से विलुप्त ही हो गए हैं। अब तो न्यूक्लियर फैमिली यानी मियां–बीवी और एक–दो बच्चों वाले छोटे कुनबे भी फिल्मी परदे से गुम हो रहे हैं।

हालांकि, ये भी एक हकीकत है कि बहुत से कारोबारी समुदायों जैसे कि मारवाड़ियों के बीच, अब भी बड़े खानदानों की परंपरा को मजबूती से निभाया जा रहा है। इसकी वजह कारोबारी हित हैं। आप इसकी मिसाल, फिल्म, 'हम आप के हैं कौन' में देख सकते हैं, जो सुपरहिट रही थी। यहां भारतीय समाज का एक और तथ्य है। यहां परिवार, शादी–ब्याह और जाति व्यवस्था में बीच बेहद गहरा ताल्लुक रहा है। भारत में जाति व्यवस्था एक अहम पहलू है जहां अपनी ही जाति में शादी करने का चलन अभी भी है जिसे अंग्रेजी में एंडोगैमी कहते हैं। इस चलन का नतीजा ये हुआ है कि इसके माध्यम से जाति व्यवस्था ने परिवार की बनावट से लेकर बच्चों की पैदाइश तक पर अपना पूर्ण नियंत्रण बनाए रखा है। दो लोगों का रिश्ता इसी आधार पर तय होता है कि वो किस खानदान से आते हैं। ऐसे में ये हैरानी की बात नहीं होनी चाहिए कि भारत में केवल पांच फीसदी लोग ही अपनी जाति के बाहर ब्याह करते हैं। ऐसे में भारतीय समाज में बड़े बदलाव की बातें करना ही बेईमानी लगता है। लेकिन एक बदलाव जो दिखाई देता है वो ये कि महिलाओं की तालीम में इजाफा और उनके सशक्तिकरण ने परिवारों की बनावट को बदला है। महिलाओं को आगे बढ़ाने में सरकारी संस्थाओं और कई सुविधाओं का भी अहम रोल रहा है, जैसे कि कामगार महिलाओं के लिए छात्रावास, कामकाजी महिलाओं के बच्चों की देखभाल के लिए क्रेच का इंतजाम, पूरी तनख्वाह के साथ मैटरनिटी लीव जैसी अन्य सुविधाओं ने महिलाओं के सशक्तीकरण में बेहद अहम रोल निभाया है। इन महिलाओं का दायरा किचन या घर की चारदिवारी से निकलकर बढ़ा है। 2011 की जनगणना के आंकड़ों के

मुताबिक, (घर के बाहर) काम करने वाली कामकाजी महिलाओं की संख्या जहां शहरी इलाकों में महज 25.5 फीसद थी, वहीं, ग्रामीण इलाकों में घरों से बाहर निकल कर काम करने वाली महिलाओं की तादाद करीब 89 प्रतिशत थी। अब शहरों और कस्बों में छोटे परिवारों चलन बढ़ रहा है। नौकरी के लिए लोग पलायन कर जाते हैं, परिवार नियोजन और महिलाओं का सशक्तीकरण इसकी प्रमुख वजहें हो सकती है। हालांकि परिवारों में अभी पितृसत्तात्मक सोच अब भी दिखाई देती है। पितृसत्ता से मतलब ये है कि महिलाओं या लड़कियों के जीवन के भी सभी बड़े फैसले पुरुष ही करते हैं।

अब महानगरों और दूसरे बड़े शहरों में अविवाहित लड़के और बड़ी तादाद में लड़कियां भी अपने मां–बाप से अलग रहने लगी हैं। इसकी वजह कभी, घर और उनके शिक्षण संस्थानों के बीच ज्यादा दूरी होती है, तो कभी घर और दफ्तर के बीच ज्यादा फासला कारण बनता है। हालांकि, परिवार से अलग रहने के बाद भी ये युवा पारिवारिक दायित्वों की डोर से बंधे रहते हैं। भारतीय समाज में पारिवारिक मूल्यों में बदलाव लाने में एक और बात ने अहम भूमिका निभाई है। वो है 'लिव–इन रिलेशनशिप', जहां दो व्यक्ति आपसी रजामंदी से बिना शादी किए साथ रहते हैं।

ये हिंदुस्तान के पारंपरिक पारिवारिक मूल्यों से बिल्कुल हट कर है। जब से 'लिव–इन' संबंधों को कानूनी मान्यता मिली है, तब से, कुनबों की बनावट में एक और आयाम जुड़ा है। शादी के पारंपरिक रिवाजों को पहली बड़ी चुनौती अलग–अलग धर्मों के लोगों के बीच शादियों से मिली थी। लेकिन, अब तो परिवारिक व्यवस्था को 'लिव–इन' के इस नए चैलेंज का भी सामना करना पड़ रहा है। क्योंकि, ये जरूरी नहीं है कि लिव–इन में रहने वाले जोड़े, आगे चल कर अपने संबंधों को सामाजिक मान्यता दिलाने के लिए शादी कर लें। बहुत से समलैंगिक जोड़ों के लिए भी यह एक जिंदगी जीने के एक नए तरीके के तौर पर उभरा है जहां वे साथ रह सकते हैं क्योंकि सामाजिक तौर पर वे शादी नहीं कर सकते। कुछ लोग पैसों की वजह से ऐसे संबंध को तरजीह देते हैं, तो, कुछ अलग–अलग संप्रदाय के होने की वजह से शादी की बात पर पैदा होने वाले टकराव से बचने के लिए लिव–इन में रहने लगते हैं। कई लोग दावा करते हैं कि ऐसे संबंधों को वैदिक युग में भी मान्यता मिली हुई थी। कई आदिवासी समुदाय भी 'प्रोबेशनल मैरिज' या अस्थायी वैवाहिक संबंधों को मान्यता देते हैं जहां किसी जोड़े को एक तय वक्त के लिए साथ रहने की इजाजत मिलती है। हालांकि, भारतीय समाज के एक तबके ने पारिवारिक व्यवस्था के इस बदलाव को भी स्वीकार करना शुरू कर दिया है। लेकिन, आज भी समाज में ज्यादातर लोग दो लोगों के बिना शादी किए साथ रहने को अच्छा नहीं मानते इसीलिए लिव–इन संबंध को सामाजिक रूप से व्यापक मंजूरी हासिल नहीं है। बड़े शहरों में भी समाज ने लिव–इन संबंधों को बस बर्दाश्त करना सीख लिया है। उन्हें स्वीकार तो आज भी नहीं किया जाता।

बड़े शहरों में बेहतर जीवन स्तर और नए–नए अवसरों ने देश के तमाम इलाकों के युवाओं को इन शहरों में आ कर बसने के लिए आकर्षित किया है। इन शहरों की आबादी का एक बड़ा हिस्सा ऐसे बाहर से आए लोगों या अप्रवासियों का है। इन्हें दूसरों की जिंदगी से कोई खास मतलब नहीं होता। आप हाल के बरसों में आई फिल्मों, जैसे–प्यार का पंचनामा, को काल्पनिक कहानी पर आधारित फिल्म न मानिए। ये आज के समाज की हकीकत है। इन तमाम कारणों से, आज भारतीय समाज में परिवार और शादी की व्यवस्था में क्रांतिकारी बदलाव आ रहे हैं। हालांकि, ये भी एक हकीकत है कि अभी मुट्ठी भर लोग ही ऐसे बदलावों का समर्थन कर रहे हैं, उन्हें स्वीकार कर रहे हैं। ज्यादातर लोग अब भी पिछली शताब्दियों की खानदानी परंपरा में यकीन रखते हैं।

इस संदर्भ में ये कहना गलत नहीं होगा कि आज भी हिंदुस्तान एक साथ कई युगों में जी रहा है। हमारे समाज में कई लोग आज भी अठारहवीं सदी की मान्यताओं के साथ जी रहे हैं, तो कुछ लोग ऐसे हैं, जो उन्नीसवीं–बीसवीं सदी के बदलावों के साथ आगे बढ़े हैं। वहीं, समाज के गिने–चुने लोग ही इक्कीसवीं सदी के जीवन मूल्यों को स्वीकार कर पाये हैं। वरना, हम आज भी खाप पंचायतों के महिलाओं के खिलाफ फैसलों को कैसे वाजिब ठहरा सकते हैं? अलग–अलग जातियों और धर्मों के प्रेमियों की हत्या को कैसे जायज कहा जा सकता है? आज भी हमारा समाज जादू–टोने और झाड़–फूंक जैसी मध्यकालीन कुरीतियों और रूढ़ियों का शिकार क्यों बना हुआ है?

(आलेख एवं चित्र साभारः बीबीसी हिंदी)

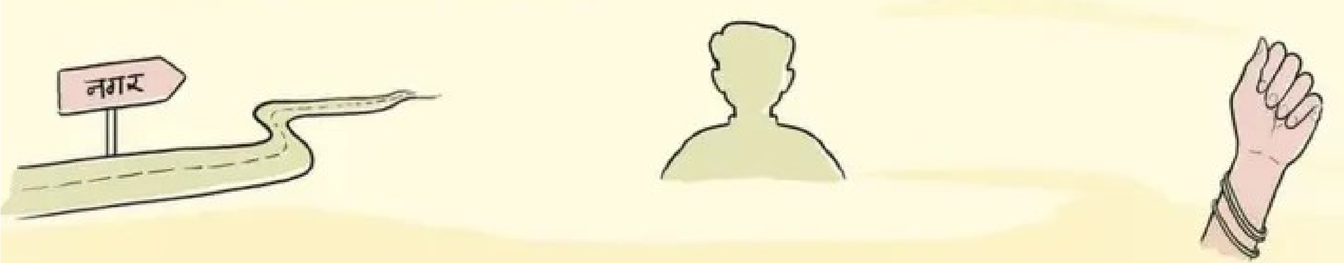

बढ़ रही है अकेले रहने की प्रवृत्ति

ब्रिटेन में स्टैंड अलोन नाम की एक संस्था है, जो परिवार से अलग हो चुके लोगों की मदद करती है। इस संस्था की रिसर्च रिपोर्ट बताती है कि ब्रिटेन में हर पांचवें परिवार में कोई एक सदस्य परिवार से अलग होता है।

हमारे देश में परिवार को सबसे ज्यादा अहमियत दी जाती है। लोग अपने परिवार के लिए क्या नहीं कर गुजरते। कभी परिवार की खुशी के लिए अपनी निजी खुशियों की कुर्बानी देते हैं, तो, कभी परिवार के साथ मिल–जुलकर रहने और परिवार को खुश रखना ही अपनी जिंदगी का मकसद बना लेते हैं।

दुनिया के बहुत से देशों में परिवार को तरजीह देने की संस्कृति है। वहीं कुछ ऐसे देश भी हैं जहां मां–बाप और बच्चे गैरों की तरह जिंदगी गुजारते हैं। खुदपरस्ती इनकी संस्कृति का हिस्सा है। बुजुर्ग मां–बाप को साथ रखना निजी जिंदगी में दखलअंदाजी माना जाता है। पिछले कुछ वर्षों में देखा गया है कि भूमंडलीकरण की वजह से उन देशों में भी परिवार टूट रहे हैं, जहां अकेले रहने की रिवायत नहीं है। भारत की ही बात करें तो बड़ी संख्या में लोग रोजगार की तलाश में गांवों से शहरों में या विदेशों में पलायन कर रहे हैं।

जिसकी वजह से ना चाहते हुए भी परिवारों में एक दूरी बन रही है। यही हालात अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हैं और आज रिसर्च का विषय बन गए हैं।

ब्रिटेन में स्टैंड अलोन नाम की एक संस्था है, जो परिवार से अलग हो चुके लोगों की मदद करती है। इस संस्था की रिसर्च रिपोर्ट बताती है कि ब्रिटेन में हर पांचवें परिवार में कोई एक सदस्य परिवार से अलग होता है। इसी तरह अमेरिका में करीब दो हजार मांओं और उनके बच्चों पर की गई रिसर्च बताती है कि दस फीसद माएं अपने बच्चों से अलग हो चुकी हैं। अमेरिका की ही एक और रिसर्च बताती है कि कुछ समुदायों में मां–बाप का बच्चों से अलग होना इतना ही आम है जितना कि तलाक होना।

आम चलन

स्टैंड अलोन संस्था की संस्थापक बेका ब्लैंड खुद इसी तरह के तजुर्बे से गुजरी हैं। उनका अपने माता–पिता से कोई संपर्क नहीं है। इनका कहना है कि अब से पांच साल पहले तक ये बात इतनी चर्चा में नहीं थी। लेकिन, जब से गूगल पर अकेलेपन से संबंधित शब्द को तलाशा जाने लगा ये शब्द गूगल ट्रेंड्स डेटा में सबसे ऊपर नजर आने लगे। खास तौर से कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और सिंगापुर में तो ये शब्द गूगल पर सबसे ज्यादा देखा गया। बेका इसकी एक और वजह बताती हैं। उनका कहना है कि साल 2018 में ब्रिटेन के लोगों ने अपने राजकुमार प्रिंस हैरी की पत्नी मेगन मार्कल के बारे में गूगल पर सबसे ज्यादा सर्च किया। मेगन मार्कल अमेरिकियों की सर्च लिस्ट में दूसरे नंबर पर थीं। असल में मेगन मार्कल अपने पिता से अलगाव की वजह से सुर्खियों में थीं। उनके अपने पिता के साथ संबंध अच्छे नहीं रहे थे। कई और बड़े सेलेब्रिटी भी इसी तरह के अनुभव से गुजर रहे हैं। मिसाल के लिए साल 2018 में ही हॉलीवुड कलाकार सर एंथनी हॉपकिंस ने माना था कि पिछले बीस वर्षों में उन्होंने शायद ही कभी अपनी बेटी से बात की हो। ये चलन नामी लोगों के साथ–साथ आम लोगों की जिंदगी में भी आम बात बनता जा रहा है।

अलग होने और साथ रहने की वजह

लगभग सभी देशों में आज बुजुर्गों के लिए ओल्ड एज हाउस बनने लगे हैं। उन्हें वहां हर तरह की सहूलियतें मिल जाती हैं। जिन देशों में कल्याणकारी सुविधाएं बड़े पैमाने पर दी जाती हैं, वहां परिवार के नौजवान सदस्यों को अलग करने में कोई बुराई भी नजर नहीं आती। उन्हें लगता है कि हर उम्र के लोगों को हमउम्रों की जरूरत होती है। वो अपने बुजुर्गों के साथ रिश्ता मजबूत बनाए रखने के लिए भी उनसे दूरी बना लेते हैं। वहीं जिन देशों में सरकार की ओर से बेहतर सुविधाएं नहीं मिलतीं वहां बुजुर्ग, नौजवान और बच्चों के बीच मजबूत रिश्ता और एक दूसरे से लगाव देखने को मिलता है। इसकी मिसाल हमें यूरोप के कुछ देशों में देखने को मिलती है।

इसके अलावा शिक्षा का उच्च स्तर भी अलगाव की एक वजह है। जिन लोगों के पास अच्छी शिक्षा है जाहिर वो अच्छे पदों पर काम करते हैं। वो काम के सिलसिले में दूसरे देशों में जाते हैं। इसकी वजह से माता–पिता से दूरी बन जाती है। साथ ही ऐसे परिवारों में आर्थिक रूप से लोग एक दूसरे पर निर्भर नहीं करते। लिहाजा उन्हें अलग होने में कोई हिचक भी महसूस नहीं होती। ये भी देखा गया है कि जो अल्पसंख्यक समुदाय के लोग एक दूसरे से ज्यादा करीब रहते हैं, उनके यहां बड़े परिवार भी एक छत के नीचे रहना पसंद करते हैं। ये भी हो सकता है कि असुरक्षा का भाव उन्हें ऐसा करने को कहता हो।

20 साल बाद कैसा होगा समाज

रिसर्च बताती हैं कि युगांडा के परिवारों में दूरी का चलन तेजी से जगह बना रहा है। कम्पाला यूनिवर्सिटी की रिसर्चर स्टीफन वनडेरा का कहना है कि रिवायती तौर पर युगांडा में बहुत बड़े–बड़े परिवार होते हैं। पूरा कुनबा एक साथ रहता है, लेकिन हाल के कुछ दशकों में इसमें बदलाव आया है। पहले बड़े परिवारों के बहुत से सदस्य युगांडा में गृह युद्ध के शिकार या एड्स के मरीजों की मदद में सारा जीवन समर्पित कर देते थे। पर, अब हालात बदल गए हैं। अब युगांडा में 50 से ऊपर की उम्र के करीब 9 फीसद लोगों ने अकेले जीवन गुजारना शुरू कर दिया है। शायद इसकी वजह शहरीकरण है। शहरों में बड़े परिवार को साथ रखना आसान नहीं है। इसलिए भी बुजुर्गों के साथ अलगाव की स्थिति पैदा हो रही है और गुजरते दौर के साथ ये स्थिति और मजबूत होगी। लेकिन कुछ रिसर्चर मानते हैं कि किसी भी समाज में सांस्कृतिक मूल्य बहुत मजबूत होते हैं। वो आसानी से खत्म नहीं होते। लिहाजा जिन समाज में परिवार के साथ रहने का चलन है वो आगे भी रहेगा। लेकिन रिसर्चर वनडेरा को यकीन है कि आने वाले 20 साल में स्थिति पूरी तरह बदल जाएगी।

तलाक और अलगाव

समाज में तलाक का चलन बढ़ता जा रहा है और परिवार टूट रहे हैं। इसके अलावा अलग सेक्सुअल पहचान वाले लोगों के लिए भी परिवार के साथ रहना मुश्किल हो जाता है और वे खामोशी से अलग हो जाते हैं। ऐसा नहीं है कि परिवार में अलगाव तेजी से और रातों रात हो रहा है, बल्कि ये बहुत धीरे–धीरे हो रहा है। कई बार छोटी सी घटना भी परिवार को तोड़ देती है। कहने को तो वो एक घटना होती है लेकिन उसके नतीजे दूरगामी होते हैं।

दुनिया का हाल

उम्र के फर्क के साथ–साथ मां और बच्चों के मूल्यों में अंतर आ जाता है। मिसाल के लिए अगर मां बहुत धार्मिक हैं और उन्होंने बच्चों को भी वही संस्कार दिए तो भी जरूरी नहीं कि बच्चे उन्हीं संस्कारों को मानें।
यहीं से टकराव की शुरूआत होती है। अलगाव की स्थिति पैदा हो जाती है। ये भी देखा गया है कि आमतौर से अलग होने वाले माता–पिता और बच्चों के बीच अलग होने की वजह को लेकर कोई संवाद नहीं होता। इसलिए पता ही नहीं चलता कि आखिर वजह क्या है। इसके अलावा भाई–बहनों के अलग मिजाज और माता–पिता का किसी एक बच्चे के प्रति गहरा लगाव भी अलगाव की वजह बन जाते हैं।

दूसरा पहलू

अलगाव के नतीजे हमेशा ही खराब हों ऐसा भी नहीं। बहुत से केस में इसके नतीजे बहुत सकारात्मक रहे हैं। मिसाल के लिए कई समाज में तलाक को बुरा माना जाता है, लेकिन एक तल्ख रिश्ते में रहने से बेहतर है अलग हो जाना। हालांकि बच्चों के लिए मुश्किल होती है, लेकिन, पति पत्नी की जिंदगी बेहतर हो जाती है। जिंदगी में आगे बढ़ने के मौके मिल जाते हैं। मर्द हो या औरत वो स्वाभाविक तौर पर आजाद रहना चाहता है और अलग होने के बाद वो इस आजादी का मजा ले पाता है।

ऐसा भी नहीं है कि परिवार में अलगाव स्थाई हो या पूरे परिवार से अलगाव हो। कई मर्तबा कुछ समय बाद लोग फिर से मिल जाते हैं। वियतनाम में ऐसे बहुत से परिवार हैं जहां एलजीबीटी सदस्यों को मां–बाप अपने से अलग कर देते हैं। लेकिन, भाई बहन उनके साथ रहते हैं। इसके अलावा परिवार से अलग होने के मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी होते हैं, लेकिन ये प्रभाव जज्बाती तौर पर मजबूत करते हैं। महिलाओं पर खास तौर से जज्बाती तौर पर बुरा असर पड़ता है। यहां तक कि कई परिवार समाज में अलग पड़ जाते हैं। वो अपने परिवार की स्थिति के बारे में किसी से बात करने से कतराते हैं। इस सबके बावजूद रिसर्चरों का कहना है कि जो लोग परिवार से अलग होने का फैसला करते हैं, वो ज्यादा मजबूत इरादों वाले और आत्मनिर्भर होते हैं। हर बात के एक नहीं कई पहलू होते हैं और हर पहलू अहम होता है।

अलगाव के अगर नुकसान हैं तो फायदे भी हैं। अलगाव किसी भी व्यक्ति को समाज में अपनी पहचान बनाने और अपनी शर्तों पर जिंदगी जीने का मौका देता है।

(आलेख एवं चित्र साभारः बीबीसी हिंदी)

75 सदस्यों का अनोखा परिवार

टूटते बिखरते रिश्तों और एकल होते परिवारों के बीच संयुक्त परिवार कम ही नजर आते हैं। वर्तमान समय में छोटी–छोटी बातों को लेकर घर में विवाद होते हैं और इन्हीं के चलते परिवार बिखर कर अलग हो जाते हैं। लेकिन इन सबके विप. रीत ग्राम देवड़ा में एक संयुक्त परिवार और उसके सदस्यों में आपसी प्रेम लोगों के लिए मिसाल बना हुआ है। परिवार का कोई भी सदस्य मुखिया को नहीं छोड़ना चाहता है। नतीजतन देखते ही देखते इस कुनबे में सदस्यों की बढ़ती संख्या से एक ही परिवार का घर अब कॉलोनी में तब्दील हो चुका है। छोटे–छोटे बने कमरों में एक ही परिवार के अलग–अलग सदस्य संयुक्त भाव से रहते हैं। इस परिवार में मुखिया सहित 75 लोग हैं। मुख्यतः खेती बाड़ी में व्यस्त रहते हैं। परिवार के लोग शाम को एक साथ बिताते हैं। बामनिया परिवार बुजुर्गों के आशीर्वाद और बच्चों की किलकारी से आबाद है।

70 वर्षीय मां नबली बाई मुखिया का फर्ज निभा रही है। उसकी नौ में से दो बेटियां बिहा दी गई है। शेष छह भाइयों का परिवार एक बड़े कुनबे के रूप में रहता है। वक्त के साथ बने कमरों में एक ही स्थान पर अलग–अलग व्यवस्था है परंतु एक ही छत के नीचे सलाह मशवरा कर वह सुख–दुख बांटते हैं। विश्व परिवार दिवस के अवसर पर इस परिवार ने एक बार फिर हमेशा साथ रहने का सकंल्प लिया।

प्रेम और भरोसे की मिसाल बना देवड़ा का संयुक्त परिवार

नबली बाई का कहना है कि वह कभी अलग नहीं हो सकते। कुल 75 सदस्यों में 35 बेटियां व 11 बेटे हैं। उम्र के अनुसार सभी बच्चे अध्ययनरत हैं। दादी नबली बाई को खुशी है कि यह भरा पूरा परिवार एक ही साथ सारे तीज त्यौहार मनाते हैं। पुत्र कैलाश बामनिया ने कहा की सभी भाई खेतों में काम करते हैं। बहुएं भी घर के कामकाज संभालने के साथ पतियों के हाथ बंटाती हैं। इस परिवार ने अपनी लगभग 40 एकड़ जमीन के हिसाब से स्वयं के सभी संसाधन जुटा रखे हैं। इस परिवार की एकजुटता की मिसाल इसी बात से साबित होती है कि किस भाई की कौन संतान है, पहचानना मुश्किल हो जाता है।

भारत में तेजी से बढ़ रहे तलाक के मामले

तलाक एक ऐसा शब्द है जिसे सुनकर ही लोगों के मन में बहुत निगेटिव भावनाएं भर जाती हैं। ऐसा लगता है कि बस इसके अलावा तो कुछ भी हो जाए वो बेहतर है। पर क्या वाकई लोग ऐसा सोच रहे हैं? अगर तलाक इतना निगेटिव है, तो भारत में इसकी दर बढ़ क्यों रही है? भारत में शादी को बहुत ही पवित्र बंधन माना जाता है और तलाक का नाम अभी भी दबी जुबान में लिया जाता है। पर अगर आप खुद अपने आस–पास के हालात को देखें, तो पाएंगे कि कई ऐसे जोड़े हैं जो अपनी शादियों से खुश नहीं हैं और तलाक के बारे में सोच रहे हैं। इसमें सामाजिक उथल–पुथल, शादी को लेकर बदलती हुई धारणाएं, लोगों के आपसी रिश्ते तो मायने रखते ही हैं, लेकिन साथ ही मायने रखती है लोगों की सोच जो शादी को लेकर तेजी से बदल रही है।

यकीनन लोग कहेंगे कि अभी भी भारत में तलाक की दर सिर्फ 1% ही है, लेकिन आप अगर सिर्फ पिछले 7–8 साल का डेटा उठाकर देखेंगे, तो ये 30–40% बढ़ गया है। पिछले साल सितंबर में मनीकंट्रोल द्वारा किए गए सर्वे में ये बात सामने आई थी। इस सर्वे में बताया गया था कि पिछले 7 सालों में तलाक की दरें बहुत तेजी से बढ़ी हैं और ये सिर्फ शहरी इलाकों में नहीं, बल्कि गांवों में भी हो रहा है।

अर्थशास्त्री सूरज जैकब और मानव विज्ञानी श्रीपर्णा चट्टोपाध्याय ने भारत की जनगणना के आधार पर अध्ययन किया है जिसने शायद पहली बार भारत में तलाक और पति पत्नी के अलग होने के मामलों को गहराई से देखने की कोशिश की है (बीबीसी हिन्दी)। भारतीय जनगणना में कुछ ऐसे सवाल होते हैं– कभी शादी नहीं की, जीवनसाथी से अलग, तलाकशुदा, विधवा या विवाहित। ऐसा हो सकता है कि कुछ महिलाएं तलाक से जुड़े सामाजिक सोच– जहां इसे धब्बे की तरह देखा जाता है, पति से अलग होने या तलाक की बात की जानकारी न दें, लेकिन अध्ययन से कुछ बातें सामने आती हैं–

➪ भारत में करीब 14 लाख लोग तलाकशुदा हैं। यह कुल आबादी का करीब 0.11 फीसद है, और शादीशुदा (भारत के) आबादी का करीब 0.24 फीसद हिस्सा है।

➪ ज्यादा हैरत की बात यह है कि अलग हो चुके लोगों की संख्या तलाकशुदा से तीन गुना ज्यादा है।

➪ मर्दों के मुकाबले ज्यादा महिलाएं तलाकशुदा हैं और पति से अलग रह रही हैं।

➪ उत्तर पूर्वी भारतीय सूबों में तलाक के मामले बाकी इलाकों से थोड़े ज्यादा हैं।

➪ भारत के उत्तरी राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा और राजस्थान, जो कि पुरुष सत्तात्मक समाज के रूप में जाने जाते हैं, वहां तलाक और सेपरेशन की दर बहुत कम है।

➪ बड़े राज्यों में गुजरात में सबसे ज्यादा तलाक के मामले हैं।

ये आंकड़े भारत में वैवाहिक संबंधों के टूटने की कौन सी कहानी बयां करते हैं? ये आंकड़े बताते हैं कि तलाक और बच्चों को लेकर समाज में तेजी से बदलाव आ रहा है, लेकिन ऐसा हो क्यों रहा है? आखिर क्यों बढ़ रही है तलाक की दरें? इसे लेकर कुछ अनुमान लगाए जा सकते हैं। विशेषज्ञ मानते हैं कि तलाक बढ़ने का एक कारण ये भी हो सकता है कि लोग अब सही और गलत समझने लगे हैं। सिर्फ हाथ उठाना और घरेलू हिंसा करना गलत है, यह धारणा जा रही है। आपके आत्मसम्मान को ठेस पहुंच.ाना और आपसे गलत व्यवहार करना भी गलत माना जाता है। तलाक के कुछ प्रमुख कारणों में इन्हें शामिल किया जा सकता है:

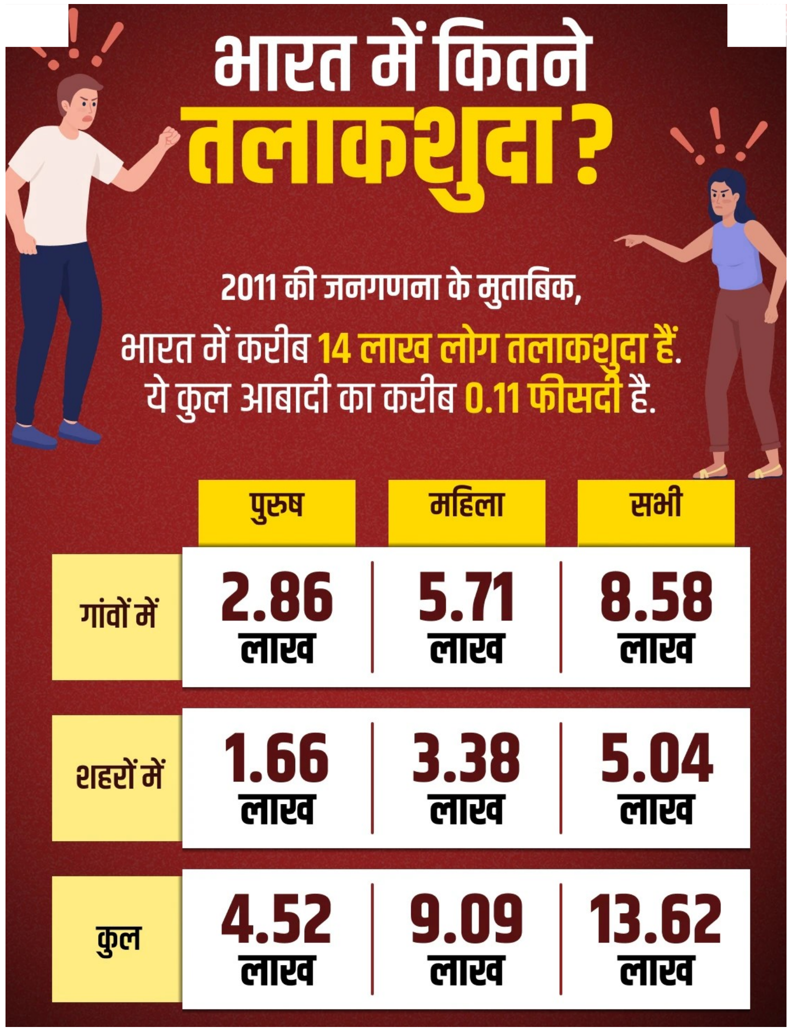

	पुरुष	महिला	सभी
गांवों में	2.86 लाख	5.71 लाख	8.58 लाख
शहरों में	1.66 लाख	3.38 लाख	5.04 लाख
कुल	4.52 लाख	9.09 लाख	13.62 लाख

जबरन शादी करवाना– किसी की शादी जबरदस्ती करवाना भी भारत में एक ट्रेंड है। हम सोनम रघुवंशी और राजा रघुवंशी के मामले में ही देख सकते हैं कि कितना मुश्किल होता है जबरदस्ती की शादी करवाना और उसके नतीजे झेलना।

मोबाइल– मोबाइल की वजह से पति–पत्नी के बीच चरित्र पर संदेह के मामले अधिक बढ़े हैं। इस कारण जो दंपती झगड़े हैं, उनके बीच समझौते की गुंजाइश भी नहीं बची है। किसी भी स्थिति में साथ रहने के लिए तैयार नहीं होते हैं। पति तलाक के लिए अड़ा रहता है, जबकि पत्नी साथ रहने के लिए।

पारिवारिक हस्तक्षेप– शादी के बाद लड़की के माता–पिता का हस्तक्षेप अधिक बढ़ा है। लड़कियां घरेलू काम नहीं करना चाहती हैं। परिवार में विवाद करती है, लेकिन इस तरह के विवाद में समझौते की उम्मीद दिखती है।

प्रतिबद्धता की कमी और धोखा– कई बार तलाक का कारण कमिटमेंट इश्यू होते हैं। शादी के बाद भी लोग किसी एक पार्टनर के प्रति प्रतिबद्ध होने से कतराते हैं। विवाह के बाद भी किसी और से संबंध बनाना आम बात हो गई है। भरोसा टूटना तलाक का बहुत बड़ा कारण बन जाता है।

संवाद ना होना– खुलकर बात ना करना। समस्या को आपसी बातचीत से सुलझाने की बजाय उसे अनदेखा करना। गलतफहमी को खत्म करने की जगह उसे चलने देना भी कारण है।

पैसों की समस्या होना– वित्तीय समस्याएं बहुत ज्यादा परेशान कर सकती हैं। खासतौर पर मिडिल क्लास परिवारों में पैसों की समस्या बड़े झगड़ों का कारण बन जाती है। शादी के पहले साल में ही अगर पैसों को लेकर तनाव शुरू हो गया है, तो दिक्कत बढ़ सकती है।

घरेलू हिंसा– भले ही लोग मानें या ना मानें, लेकिन घरेलू हिंसा अभी भी छोटे गांव से लेकर किसी महानगर तक एक बहुत बड़ा कारण है तलाक का। भावनात्मक और शारीरिक प्रताड़ना तलाक का एक मुख्य कारण होता है।

बिना सिर पैर की अपेक्षाएं– शादी को लेकर कई बार लोग परियों की कहानियों के बारे में सोचने लगते हैं। पतियों को पत्नियां फिल्म हिरोइनों की तरह चाहिए तो लड़कियों को शादी के बाद राजकुमारी वाला ट्रीटमेंट चाहिए, लेकिन वो खुद कुछ करने को तैयार नहीं।

टूट रहे परिवार, बदल रहे मनोभाव

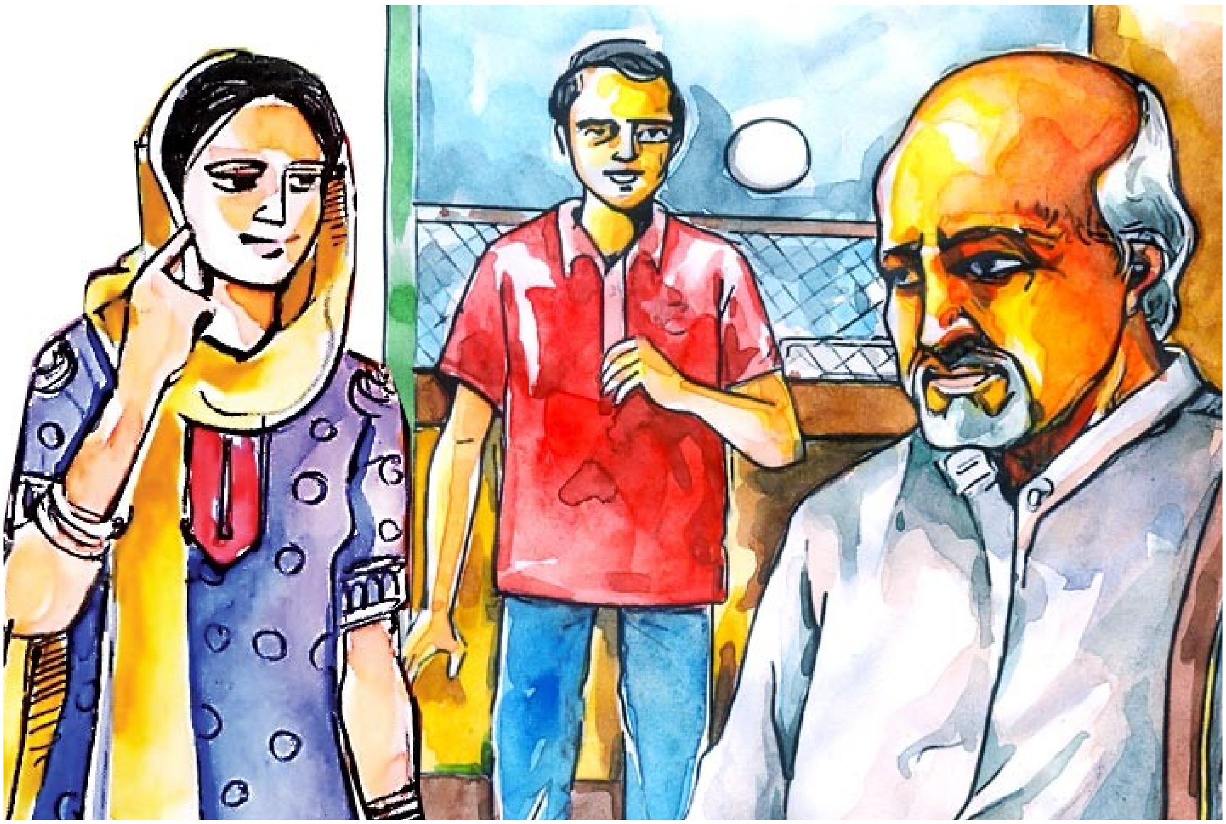

चित्र साभारः hindi.webdunia.com

भौतिकवादी युग में एक–दूसरे की सुख–सुविधाओं की प्रतिस्पर्धा ने मन के रिश्तों को झुलसा दिया है। कच्चे से पक्के होते घरों की ऊँची दीवारों ने आपसी वार्तालाप को लुप्त कर दिया है। पत्थर होते हर आँगन में फूट–कलह का नंगा नाच हो रहा है। आपसी मतभेदों ने गहरे मन भेद कर दिए हैं। बड़े–बुजुर्गों की अच्छी शिक्षाओं के अभाव में घरों में छोटे रिश्तों को ताक पर रखकर निर्णय लेने लगे है। फलस्वरूप आज परिजन ही अपनों को काटने पर तुले है।

एक तरफ सुख में पड़ोसी तलवा चाट रहे हैं तो दुःख अकेले भोगने पड़ रहे हैं। हमें ये सोचना–समझना होगा कि अगर हम सार्थक जीवन जीना चाहते हैं तो हमें परिवार की महत्ता समझनी होगी और आपसी तकरारों को छोड़कर परिवार के साथ खड़ा होना होगा तभी हम बच पाएँगे और ये समाज रहने लायक होगा। आज सभी को एक संस्था के रूप में पारिवारिक मूल्यों और परिवार के बारे में सोचने–समझने की बेहद सख्त जरूरत है और साथ ही इन मूल्यों की गिरावट के कारण ढूँढ़कर उनको दुरुस्त करने की भी जरूरत है। इसके लिए समाज के कर्णधार कवि/लेखकों/गायकों/ नायक/नायिकाओं/शिक्षक वर्गों और अन्य सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ–साथ राजनीतिज्ञों को एक संस्था के रूप में परिवार के पतन के निहितार्थ के बारे में भी लिखना और सोचना चाहिए। खुले मंचों से इस बात पर चर्चा होनी चाहिए कि इस गिरावट के कारण क्या हैं? और इस गिरावट से कैसे उभरा जा सकता है? युवा कवि सत्यवान सौरभ ने इस स्थिति को अपने शब्दों में कहते हुए सही लिखा है कि–

व्यथा

टूट रहे परिवार हैं, बदल रहे मनभाव!
प्रेम जताते गैर से, अपनों से अलगाव!!

परिवार, भारतीय समाज में, अपने आप में एक संस्था है और प्राचीन काल से ही भारत की सामूहिक संस्कृति का एक विशिष्ट प्रतीक है। संयुक्त परिवार प्रणाली या एक विस्तारित परिवार भारतीय संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है, जब तक कि शहरीकरण और पश्चिमी प्रभाव के मिश्रण ने उस संस्था को झटका देना शुरू नहीं किया। परिवार एक बुनियादी और महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्था है जिसकी व्यक्तिगत और साथ ही सामूहिक नैतिकता को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। परिवार, सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्यों का पोषण और संरक्षण करता है। यह कानून का पालन करने वाले नागरिकों को प्रोत्साहन देकर समाज को स्थिरता प्रदान करता है। यह व्यक्ति में सामूहिक चेतना के निर्माण में मदद करता है। समाजीकरण में यह भावनात्मक सम्बन्ध का प्रमुख स्रोत है, समाजीकरण और नैतिकता को आकार देने के तरीके से सही और गलत की भावना उत्पन्न करता है। बच्चों को उनके माता–पिता, उनके साथियों और उनके समाज के "सामाजिक सम्मेलनों" के अनुसार नैतिक निर्णय लेने के रूप में देखा जाता है। यह व्यक्तिगत चरित्र को मजबूत करता है। यह आदत बनाने का पहला स्रोत है जैसे अनुशासन, सम्मान, आज्ञाकारिता।

नैतिक मजबूती के साथ–साथ यह व्यक्ति के परिवार के सदस्यों, रिश्तेदारों को बिना किसी हिचकिचाहट के कठिन समय में भरोसा करने के लिए लचीलापन प्रदान करता है। यह कठिनाइयों से निपटने के लिए अनैतिक साधनों के उपयोग से बचाता है। परिवार लोगों को सांसारिक समस्याओं के प्रति स्त्री के दृष्टिकोण को विकसित करने में मदद करता है। मगर वर्तमान दौर में हम संस्था के रूप में परिवार में गिरावट का कटु अनुभव झेल रहे है। गिरावट के प्रतीक के रूप में आज परिवार खंडित हो रहा है, वैवाहिक सम्बन्ध टूटने, आपसे भाईचारे में दुश्मनी एवं हर तरह के रिश्तों में कानूनी और सामाजिक झगड़ों में वृद्धि हुई है। आज सामूहिकता पर व्यक्तिवाद हावी हो गया है। इसके कारण भौतिक उन्मुख, प्रतिस्पर्धी और अत्यधिक आकांक्षा वाली पीढ़ी तथाकथित जटिल पारिवारिक संरचनाओं से संयम खो रही है। जिस तरह व्यक्तिवाद ने अधिकारों और विकल्पों की स्वतंत्रता का दावा किया है। उसने पीढ़ियों को केवल भौतिक समृद्धि के परिप्रेक्ष्य में जीवन में उपलब्धि की भावना देखने के लिए मजबूर कर दिया है।

वर्तमान स्थिति में भड़काऊ रवैया परिवारों के बिखरने का प्रमुख कारण है। परिवार के अन्य सदस्यों की उच्च आय और कम जिम्मेदारी ने विस्तारित परिवारों को विभाजित किया है। उच्च तलाक की दर निस्संदेह सामाजिक रिश्तों को निगल रही है। विवाह के टूटने का प्रमुख कारण एकल रवैये, व्यवहार और समझौता किए गए मूल्यों में प्रौद्योगिकी काला धब्बा है। युवा पीढ़ी का असामाजिक व्यवहार परिवारों को तेजी से नष्ट कर रहा है। आज के अधिकांश सामाजिक कार्य, जैसे कि बच्चे की परवरिश, शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, बुजुर्गों की देखभाल, आदि, बाहर की एजेंसियों, जैसे क्रेच, मीडिया, नर्सरी स्कूलों, अस्पतालों, व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्रों, धर्मशाला संस्थानों ने ठेकेदारों के तौर पर सँभाल लिए हैं जो कभी परिवार के बड़े लोगों की जिम्मेवारी होती थी।

परिवार संस्था के पतन ने हमारे भावनात्मक रिश्तों में बाधा पैदा कर दी है। एक परिवार में एकीकरण बंधन आपसी स्नेह और रक्त से सम्बन्ध हैं। एक परिवार एक बंद इकाई है जो हमें भावनात्मक सम्बन्धों के कारण जोड़कर रखता है। नैतिक पतन परिवार के टूटने में अहम कारक है क्योंकि वे बच्चों में दूसरों के लिए आत्मसम्मान और सम्मान की भावना नहीं भर पाते हैं। पद–पैसों की अंधी दौड़ से आज सामाजिक–आर्थिक सहयोग और सहायता का सफाया हो गया है। परिवार अपने सदस्यों, विशेष रूप से शिशुओं और बच्चों के विकास और विकास के लिए आवश्यक वित्तीय और भौतिक सहायता तक सीमित हो गए हैं। हम आये दिन कहीं न कहीं बुजुर्गों सहित अन्य आश्रितों की देखभाल के लिए, अक्षम और दुर्बल परिवार प्रणाली की गिरावट की बातें सुनते और देखते हैं जब उन्हें अत्यधिक देखभाल और प्यार की आवश्यकता होती है।

आज ज्यादातर लोग सार्थक जीवन का अभाव झेल रहे हैं। पारिवारिक प्रणाली के पतन का एक नुकसान ये है कि साझाकरण, देखभाल, सहानुभूति, सहयोग, ईमानदारी, सुनने, स्वागत करने, मान्यता, विचार, सहानुभूति और समझ के गुणों का कम होना है। हाल के दिनों में तनाव की सहनशीलता में कमी, चिंता और अवसाद जैसे मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दे बढ़ रहे हैं। परिवार प्रणाली बुजुर्ग सदस्यों से बात करने, बच्चों के साथ खेलने आदि से गहरी असुरक्षा की अभिव्यक्ति के साथ मानसिक रूप से व्यक्ति को राहत दे सकती है। परिवार प्रणाली में गिरावट अधिक व्यक्तियों के लिए मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों के मामले पैदा कर सकती है।

भविष्य में संस्था के रूप में परिवार में गिरावट समाज में संरचनात्मक परिवर्तन लाएगी। सकारात्मक पक्ष पर, भारतीय समाज में जनसंख्या की वृद्धि में कमी देखी जा सकती है और संस्था के रूप में परिवार में गिरावट के प्रभाव के रूप में कार्यबल का महिलाकरण हो सकता है। हालाँकि, संयुक्त परिवार से परिवार के संरचनात्मक परिवर्तनों को समझने की आवश्यकता है, कुछ मामलों में इसे परिवार प्रणाली की गिरावट नहीं कहा जा सकता है। जहाँ परिवार प्रणाली किसी सकारात्मक परिवर्तन के लिए संयुक्त परिवार से एकल परिवार में परिवर्तित होती है। वैसे भी भारतीय समाज भी परिवार के संलयन और विखंडन की अनूठी विशेषता का निवास करता है जिसमें भले ही परिवार के कुछ सदस्य अलग–अलग स्थानों में अलग–अलग रहते हैं, फिर भी एक परिवार के रूप में रहते हैं।

(साभारः sahityakunj.net)

तकनीक बनी मुसीबत

स्मार्टफोन बिगाड़ रहा रिश्तों का स्वाद

चित्र साभारः www.tribuneindia.com

➪ लगभग 94% बच्चों ने कैमरा, कॉलिंग और मैसेजिंग को तीन मुख्य फीचर के रूप में चुना। वे अपने माता–पिता के फोन में सोशल मीडिया, मनोरंजन और गेमिंग शामिल नहीं करेंगे।
➪ 69% बच्चे स्मार्टफोन के अत्यधिक उपयोग को अपने और अपने माता–पिता के बीच झगड़े का कारण मानते हैं।
➪ 75% माता–पिता इस बात से चिंतित रहते हैं कि उनके बच्चों को सार्थक रिश्ते बनाने में कठिनाई हो सकती है, लेकिन वे इस बात को नजरअंदाज कर देते हैं कि उनका स्वयं का फोन उपयोग उनके बच्चों के साथ उनके रिश्ते को कैसे प्रभावित करता है।
➪ 76% बच्चे और 84% माता–पिता अधिक सार्थक पारिवारिक समय को प्रोत्साहित करके गहरे संबंध बनाना चाहते हैं।

जैसे–जैसे स्मार्टफोन हमारे जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा बनते जा रहे हैं, सभी आयु वर्गों में, खासकर बच्चों में, स्मार्टफोन के अत्यधिक उपयोग को लेकर चिंताएँ बढ़ रही हैं। मानवीय रिश्तों पर, खासकर माता–पिता और बच्चों के बीच, स्मार्टफोन के अत्यधिक उपयोग के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए, एक विश्वसनीय वैश्विक स्मार्टफोन ब्रांड, वीवो ने साइबरमीडिया रिसर्च (सीएमआर) के साथ मिलकर अपने स्विच ऑफ शोध अध्ययन के छठे संस्करण के निष्कर्षों का अनावरण किया। 'स्मार्टफोन का अभिभावक–बच्चे के रिश्तों पर प्रभाव' शीर्षक से यह अध्ययन इस बात पर जोर देता है कि कैसे अत्यधिक और अनियंत्रित स्मार्टफोन का उपयोग बच्चों और उनके माता–पिता के बीच के रिश्तों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है।

छह साल पहले शुरू किया गया, वीवो का स्विच ऑफ अभियान जिम्मेदारी से स्मार्टफोन के इस्तेमाल की वकालत करता है और परिवारों को वास्तविक जीवन के रिश्तों को प्राथमिकता देने के लिए प्रोत्साहित करता है। वीवो स्विच ऑफ अध्ययन के छठे संस्करण ने बीते दिसम्बर में चिंताजनक जानकारियाँ उजागर की हैं जो माता–पिता और बच्चों के लिए अपने बेवजह स्मार्टफोन के इस्तेमाल पर विचार करने की तत्काल आवश्यकता पर प्रकाश

तकनीक बनी मुसीबत

डालती हैं। अध्ययन के अनुसार, माता–पिता और बच्चे दोनों एक–दूसरे के साथ घनिष्ठ संबंध चाहते हैं, लेकिन कोई भी समूह अपनी अत्यधिक और उद्देश्यहीन स्मार्टफोन की आदतों पर लगाम लगाने को तैयार नहीं है। औसतन, माता–पिता प्रतिदिन अपने स्मार्टफोन पर पाँच घंटे से ज्यादा समय बिताते हैं, जबकि बच्चे चार घंटे से ज्यादा। उल्लेखनीय रूप से, 73% माता–पिता और 69% बच्चे स्पष्ट रूप से स्मार्टफोन के इस्तेमाल को अपने बीच झगड़े का कारण मानते हैं। चौंकाने वाली बात यह है कि 66% बच्चों ने कहा कि अगर उनके सभी दोस्त भी सोशल मीडिया छोड़ दें, तो वे भी छोड़ देंगे। यह उनके सोशल मीडिया व्यवहार पर एक सामूहिक समस्या के गहरे प्रभाव को दर्शाता है। अध्ययन से यह भी पता चलता है कि लगभग दो–तिहाई माता–पिता और बच्चे, दोनों ही सार्थक सामाजिक पलों, जैसे सैर–सपाटे, छुट्टियों या समारोहों के दौरान भी अपने स्मार्टफोन का इस्तेमाल करते हैं।

हालाँकि दोनों ही समूह स्मार्टफोन के अत्यधिक उपयोग के नकारात्मक प्रभावों को स्वीकार करते हैं, लेकिन बच्चे अपने माता–पिता की तुलना में इसके दुष्प्रभावों के बारे में ज्यादा जागरूक प्रतीत होते हैं। चिंताजनक बात यह है कि हर तीन में से एक बच्चा चाहता है कि काश कुछ सबसे लोकप्रिय सोशल मीडिया ऐप्स का आविष्कार ही न हुआ होता। इसके अलावा, जब उनसे अपने माता–पिता के लिए फोन डिजाइन करने के लिए कहा गया, तो लगभग 94% बच्चों ने कॉलिंग, कैमरा और मैसेजिंग जैसी सुविधाओं पर जोर दिया। उन्होंने फोन को इस तरह डिजाइन किया कि उसमें गेम, मनोरंजन या कुछ सोशल मीडिया ऐप्स शामिल न हों, जिन पर माता–पिता कथित तौर पर अपना ज्यादातर समय स्मार्टफोन पर बिताते हैं।

वीवो इंडिया की कॉर्पोरेट रणनीति प्रमुख गीता चन्नाना ने कहा, ''हमारा मानना है कि तकनीक को सार्थक संबंधों को बढ़ावा देना चाहिए और जीवन को समृद्ध बनाना चाहिए, न कि उसमें बाधा डालनी चाहिए। हालाँकि स्मार्टफोन हमारी दिनचर्या में सहज रूप से समाहित हो गए हैं, लेकिन स्मार्टफोन के साथ अनजाने रिश्ते उन वास्तविक जीवन के रिश्तों में बाधाएँ पैदा कर सकते हैं जिनकी लोग सबसे ज्यादा परवाह करते हैं। इस साल के निष्कर्ष इस बारे में जरूरी सवाल उठाते हैं कि स्क्रीन के प्रभुत्व वाली दुनिया में परिवार कैसे सार्थक संबंध बना सकते हैं।''

अपने स्विच ऑफ अभियान के माध्यम से, हम पिछले छह वर्षों से स्मार्टफोन के सचेत उपयोग की वकालत कर रहे हैं और व्यक्तिगत संबंधों पर इसके प्रभाव के बारे में जागरूकता बढ़ा रहे हैं। इस वर्ष, हम इस बातचीत को माता–पिता और बच्चों के बीच के बंधन तक बढ़ा रहे हैं, और माता–पिता से आग्रह कर रहे हैं कि वे अपने बच्चों को 'स्विच ऑफ' का उपहार दें। यह एक मजबूत अनुस्मारक है कि हम रुकें, अलग हों और सच्ची एकजुटता के पलों को प्राथमिकता दें।'' बाल मनोवैज्ञानिक और पेरेंटिंग काउंसलर, रिद्धि दोशी पटेल ने कहा, ''एक बाल मनोवैज्ञानिक होने के नाते, मैं स्मार्टफोन के अत्यधिक उपयोग से माता–पिता और बच्चों के बीच पैदा होने वाले मौन अलगाव को देखती हूँ। ये आँकड़े एक ऐसी वास्तविकता को रेखांकित करते हैं जिसका अहसास कई परिवारों को पहले से ही है। फोन अब जरूरी तो हो गए हैं, लेकिन साथ ही अलगाव भी पैदा कर रहे हैं। तकनीक के सचेतन उपयोग को बढ़ावा देने वाले अभियान न केवल मददगार हैं, बल्कि परिवर्तनकारी भी हैं। संतुलन अपनाकर, हम मजबूत भावनात्मक बंधनों को पोषित कर सकते हैं, सच्चे जुड़ाव को बढ़ावा दे सकते हैं, और ऐसे घर बना सकते हैं जहाँ रिश्ते स्क्रीन से परे भी पनपें।'' वीवो के अध्ययन के कुछ प्रमुख बिंदु इस प्रकार हैं–

- ➪ 76% माता–पिता और 71% बच्चे इस बात से सहमत हैं कि वे अपने स्मार्टफोन के बिना नहीं रह सकते।
- ➪ 64% बच्चों ने तो यहां तक कहा कि वे अपने स्मार्टफोन के आदी हो चुके हैं, तथा अपना अधिकांश समय सोशल मीडिया और मनोरंजन गतिविधियों में बिताते हैं।
- ➪ दो–तिहाई बच्चों का कहना है कि यदि उनके मित्र सोशल मीडिया पर नहीं होते तो वे इसका उपयोग नहीं करते।
- ➪ 90% से अधिक बच्चे चाहते हैं कि काश, सबसे लोकप्रिय सोशल मीडिया ऐप्स का आविष्कार ही न हुआ होता।
- ➪ स्मार्टफोन के अत्यधिक उपयोग से व्यक्तिगत रिश्तों में तनाव पैदा हो गया है, तथा माता–पिता और बच्चे दोनों ही इसे अपने बीच संघर्ष का कारण मानते हैं।
- ➪ 66% माता–पिता और 56% बच्चे स्मार्टफोन के अत्यधिक उपयोग के कारण अपने संबंधों में नकारात्मक परिवर्तन देखते हैं।
- ➪ 73% माता–पिता और 69% बच्चे इस बात से सहमत हैं कि स्मार्टफोन का अत्यधिक उपयोग उनके बीच झगड़े का कारण है।
- ➪ माता–पिता और बच्चे, दोनों ही घनिष्ठ संबंधों की चाहत रखते हैं। स्मार्टफोन के अत्यधिक और अस्वास्थ्यकर उपयोग की चिंता ने माता–पिता और बच्चों, दोनों को स्क्रीन टाइम सीमित करने और नोटिफिकेशन बंद करने जैसे उपाय तलाशने के लिए प्रेरित किया।
- ➪ 75% माता–पिता इस बात को लेकर चिंतित रहते हैं कि उनके बच्चे अपने आसपास स्मार्टफोन के उपयोग पर रोक लगाए बिना सार्थक रिश्ते विकसित कर पाएंगे या नहीं।
- ➪ 55% माता–पिता स्मार्टफोन के कारण ध्यान भटके बिना मौज–मस्ती करना और गतिविधियों को साझा करना चाहते हैं। साथ ही, वे स्क्रीन समय के प्रति सचेत रहना चाहते हैं और वास्तविक जीवन के संबंधों को प्राथमिकता देना चाहते हैं।
- ➪ 56% ने घर पर स्मार्टफोन के उपयोग की स्वस्थ आदतें विकसित करने की आवश्यकता को पहचाना और 69% ने स्क्रीन समय की सीमाएं निर्धारित करने और उनका सम्मान करने, फोन मुक्त क्षेत्र स्थापित करने आदि के लिए अपने बच्चों के साथ मिलकर काम करने पर सहमति जताई।

(साभारः vivonewsroom.in)

नई हकीकत

'एम्प्टी नेस्ट सिंड्रोम' का शिकार होते माता–पिता

चिड़िया का घोंसला और उसके अंडे। अंडों से बच्चों का बाहर आना। चिड़िया का उन्हें दाना चुगना सिखाना, बच्चों का बड़ा होना और फुर्र से अपनी जिंदगी जीने के लिए उड़ जाना। घोंसले का खाली रह जाना। ऐसा ही कुछ हाल माता–पिता का होता है, जब बच्चे पढ़ाई, करियर या शादी के बाद पेरेंट्स से दूर रहने लगते हैं। घर खाली लगता है। माता–पिता को उदासी घेर लेती है। चिड़िया तो रोती नहीं मगर माता–पिता की आंखें बच्चों को याद कर नम होती रहती हैं। इसे ही 'एम्प्टी नेस्ट सिंड्रोम' कहा जाता है। बच्चों के बिना खाली घर काटने को दौड़ता है। ये उदासी आपकी और हमारी ही नहीं, दुनिया का सबसे ताकतवर परिवार भी दुख के इस दौर से गुजर चुका है। भूतपूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा की पत्नी मिशेल ओबामा भी इस उदासी से गुजरी हैं। उन्होंने कहा था, 'हमारी युवा होती बेटियां मारिया और साशा मेरे और पति के साथ सबसे कम वक्त गुजारती हैं। शायद मेरी बेटियां हमें 'एम्प्टी नेस्ट सिंड्रोम' के लिए तैयार कर रही हैं।'

बराक और मिशेल को अपना खाली वक्त काटने के लिए नई हॉबी ढूंढनी होंगी। मिशेल ने बेटियों को मजाक में यह भी कहा था, 'तुम जहां पढ़ने जाओगी, हम उसके पास एक घर खरीद लेंगे और ज्यादा याद आएगी तो उनकी क्लास तक में पहुंच जाएंगे।' उनके इस मजाक को बेटियों ने हंसकर लिया था। पेरेंट्स बच्चों की खुशी में खुशी ढूंढने की को. शिश के बावजूद एक खालीपन भी महसूस करते हैं। कई बार मां यहां तक कह देती हैं, ''तुम थे नहीं, इसलिए मैंने खाने में ये नहीं बनाया। अब मैं अपने और पापा के लिए क्या बनाती?'' बच्चों से दूर होने पर मां–बाप के अंदर इमोशन का जो ज्वार उठता है, वही असल में 'एम्प्टी नेस्ट सिंड्रोम' है।

नई हकीकत

बच्चों से जुड़ी है ये कंडीशन, बीमारी नहीं, मनस्थिति

Empty का अर्थ है खाली और Nest मतलब घोंसला। यानी जब बच्चों के चले जाने से पेरेंट्स के लिए घर 'खाली घोंसला' बन जाता है। हालांकि, यह बीमारी नहीं, भावनात्मक स्थिति है। सभी इससे कम या ज्यादा तौर पर गुजरते हैं। 1914 में अमेरिकी लेखक और एक्टिविस्ट डोरोथी कैनफील्ड ने इस स्थिति को एम्प्टी नेस्ट सिंड्रोम का नाम दिया। उन्होंने कुछ महिलाओं के अनुभव को परिभाषित करते हुए पहले 'Gloom and Doom' का इस्तेमाल किया था यानी 'निराशा और कयामत' जैसी भावनाएं। 70 के दशक में सिंड्रोम को और अधिक मान्यता मिली, जब इसमें स्त्री और पुरुष दोनों के व्यवहार और मूड को शामिल किया गया।

बीएचयू के डिपार्टमेंट ऑफ साइकोलॉजी में प्रोफेसर योगेश कुमार आर्य बताते हैं कि बच्चे के घर पर न होने से अचानक आया बदलाव पेरेंट्स को खालीपन, उदासी, सूनापन और अकेलापन से भरता है। इससे घर पर रहने वाली महिलाएं ज्यादा जूझती हैं। क्योंकि उन्हें अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में कोई काम नजर नहीं आता। अब आप एक मां की कहानी जानिए, जो अकेलेपन के डर की वजह से 25 साल जिस शहर में रही, उसे छोड़कर गांव लौट गई।

अकेलेपन के डर से मुंबई की बसी–बसाई फास्ट लाइफ छोड़ दी

सरला थपलियाल उत्तराखंड से हैं। शादी के बाद मुंबई जाकर बस गईं। पहाड़ से जाकर मुंबई जैसे शहर में उन्होंने खुद की एक दुनिया बनाई, जिसमें पति और दो बच्चे शामिल थे। सरला के पति जापान में शेफ थे। इस वजह से घर की और दो बेटों की सारी जिम्मेदारी उनके ऊपर थी। घर–बच्चों के अलावा उन्होंने अपनी कोई अलग दुनिया, दोस्त या रुचियां नहीं बनाईं। बाद में पति साथ रहने लगे और बच्चे भी बड़े हो गए। सरला बताती हैं कि एक दिन उनके छोटे बेटे ने पढ़ाई के लिए कनाडा जाने का फैसला किया। सरला को आज भी याद है, ''जब बेटे ने घर में ये बात बताई तब हम दोनों पति–पत्नी के लिए इस बात को हजम कर पाना मुश्किल था। लेकिन मुझे इस बात से ज्यादा परेशानी हो रही थी। मैं अकेले में रोती, सोचती कि मैंने तो पूरे परिवार के एक साथ बने रहने का सपना देखा था। अपने जीवन के दिन–रात बच्चों को दिए। मेरी हर खुशी उनसे जुड़ी रही। बड़ा बेटा तब तक हमारे साथ था। जब छोटा बेटा बाहर चला गया तो पूरे समय दिमाग में चलता रहता कि ये तो मैंने सोचा नहीं था। फिर एक दिन बड़े बेटे ने भी कह दिया कि उसे अब मुंबई में नहीं रहना और वो भी उत्तराखंड जाना चाहता है। तब हम पति–पत्नी दोनों वापस उसी मेंटल स्टेट में जा पहुंचे जब छोटे बेटे ने विदेश जाने का फैसला सुनाया था। अब बड़ा बेटा भी घर से बाहर जाने को कह रहा था। हमने सोचा कि हम दोनों बिना बच्चों के शहर में कैसे रहेंगे और अकेले रहकर करेंगे भी क्या?''' जबकि सरला का मायका मुंबई में ही है। सरला ने बेटे के साथ उत्तराखंड शिफ्ट होने का फैसला कर लिया। मुंबई में 25 साल से बनी–बनाई गृहस्थी छोड़कर वे पहाड़ों में बेटे के साथ आ गए। सरला का अनुभव उनके अंदर बैठे अकेलेपन के डर का अहसास कराता है। ये अहसास माता–पिता दोनों महसूस करते हैं लेकिन महिलाओं पर ज्यादा असर देखने को मिलता है, क्यों?

मां अकेलापन ज्यादा महसूस करती है

ये मनःस्थिति माता–पिता दोनों को प्रभावित करती है, लेकिन इसका असर दोनों पर अलग–अलग हो सकता है। वहीं, इस स्थिति में महिलाएं ज्यादा प्रभावित होती हैं। क्योंकि वे अपने जीवन के महत्वपूर्ण साल बच्चों की देखभाल और उनका रूटीन संभालने में ही लगा देती हैं। कई महिलाएं परिवार और बच्चों के लिए अपना करियर तक छोड़ देती हैं। बच्चों के घर छोड़कर जाने के बाद उन्हें यह समझ नहीं आता कि जीवन में अचानक आए इस खालीपन से किस तरह निपटा जाए।

नॉर्मल होने में डेढ़ से दो साल का समय लग सकता है

साइकोलॉजी के प्रोफेसर योगेश कुमार आर्य कहते हैं कि जब बच्चे घर से चले जाते हैं तो कई पेरेंट्स को अचानक से यह फीलिंग आती है कि जैसे हम अपने लिए तो जिए ही नहीं। वे सोचते हैं

कि उन्होंने अपनी सारी जिंदगी बच्चों पर लगा दी और आज बच्चे उनकी तरफ से लापरवाह हैं। यह सोच महिलाओं को ज्यादा अकेलेपन का अहसास देती है। इस सिंड्रोम से घर पर रहने वाली महिलाएं ज्यादा प्रभावित होती हैं और कामकाजी पर थोड़ा कम असर देखने को मिलता है। एक बार बच्चा बाहर चला जाता है तो मां को लगता है कि अब परिवार को उनकी जरूरत नहीं रही। जिनको खुश रखने के लिए वो सारी जिंदगी मेहनत करती रहीं, वही उनके साथ नहीं हैं। ऐसे में मां बेकार होने के अहसास और भटकाव से गुजरती है। साइकोलॉजिस्ट मानते हैं कि स्त्री को मां के रोल से निकलकर आत्मनिर्भर महिला बनने में डेढ़ से दो साल का समय लग सकता है।

बच्चों के जाने के बाद मैंने जीवन जैसे–तैसे काटा

गाजियाबाद की रहने वाली कुसुम देवी कहती हैं, जब मेरे बच्चे पढ़ने के लिए बाहर जाते, मुझे एक दिन पहले से रोना आने लगता। मेरे दो बेटे हैं, बेटी नहीं है। बेटों के जाने के बाद घर का सूनापन सोचकर मैं घबरा जाती। मुझे लगता कि इस स्थिति में कैसे रहूंगी या कैसे जिऊंगी? जैसे बेटी विदा करने की तकलीफ होती है, बेटों के जाने पर मैंने वैसा ही दर्द महसूस किया है। अब उनकी याद आने पर फोन करने के लिए भी सोचना पड़ता है क्योंकि बच्चे काम में बिजी रहते हैं। मेरे पति को ज्यादा दिक्कत नहीं हुई। वो जॉब में थे तो उनका समय कट जाता था। महिलाएं कभी–कभी शरीर में आ रहे बदलावों की वजह से भी इस सिंड्रोम से गुजरती हैं। ऐसा उन्हें अक्सर मेनोपॉज के दौरान महसूस होता है। महिला को लगता है कि पति और परिवार के बीच उसकी अहमियत कम हुई है। इसके अलावा शादी का टूटना, माता–पिता की मृत्यु जैसी परिस्थितियों से गुजरने पर उसे ऐसा ही महसूस होता है।

पश्चिम के एकल परिवारों का भारत में बढ़ता चलन

पश्चिमी देशों में सदियों से न्यूक्लियर फैमिली का सिस्टम रहा है। इस वजह से एम्प्टी नेस्ट सिंड्रोम पश्चिमी देशों के लिए नई बात नहीं है। भारत में भी न्यूक्लियर फैमिली का कॉन्सेप्ट अब तेजी से बढ़ा है। हमारे देश में हमेशा से संयुक्त परिवार का चलन रहा है। ऐसे में अगर बच्चे घर से बाहर जाते भी थे तो परिवार के दूसरे बच्चों से वो खालीपन या कमी पूरी हो जाती। परिवार छोटे हुए हैं, बच्चों की संख्या परिवार में कम होने से और प्राइवेसी और स्पेस की मांग के चलन से इस सिंड्रोम ने ज्यादा असर छोड़ना शुरू किया है। लेकिन बदलते हालात की वजह से लोगों के बीच न्यूक्लियर फैमिली का ट्रेंड बढ़ा है। लोग परिवार में ही प्राइवेसी की मांग करने लगे हैं। इस सिंड्रोम का असर अमेरिका में काफी पुराना है और जापान भी सालों पहले इस दौर से गुजर चुका है।

भारत का सोशल सपोर्ट सिस्टम राहत

आज के समय में लोगों के लिए टाइम और तरक्की रिश्तों से ज्यादा कीमती हो गए हैं। घर में रहकर भी आपसी बातचीत ज्यादा नहीं होती। घर में होने वाली बातचीत में स्कूल, ऑफिस और जिम्मेदारियों का दखल बढ़ा है। कई पेरेंट्स अपने बच्चों के पास रहने जाते हैं लेकिन वहां ज्यादा दिन रह नहीं पाते। इसकी आम वजह है कि वहां भी जाकर उनका दिन अकेले ही गुजरता है। बच्चे शाम को लौटने के बाद भी बिजी रहते हैं। ऐसे में पेरेंट्स को अपना घर याद आता है, जहां उनकी रूटीन और सोशल सपोर्ट सिस्टम होता है।

चीन में 'वन चाइल्ड पॉलिसी' पेरेंट्स के लिए बनी सिरदर्द

चीन के नेशनल नेचुरल साइंस फाउंडेशन के यूथ साइंस फंड प्रोजेक्ट ने वहां के बुजुर्गों को लेकर एक सर्वे किया। सर्वे के अनुसार चीन दुनिया की सबसे बड़ी बुजुर्ग आबादी है, जो अब भी बढ़ रही है। 2030 तक वहां की कुल बुजुर्ग आबादी के 90% लोग इस सिंड्रोम से पीड़ित होंगे। ऐसे में वहां तेजी से बढ़ती बुजुर्गों की संख्या, वन चाइल्ड पॉलिसी और' ट्रेडिशनल ओल्ड एज केयर कॉन्सेप्ट' के कारण एम्प्टी नेस्ट सिंड्रोम की समस्या गंभीर हो जाएगी। चीन के शहरों में सिंगल या सिर्फ लाइफ पार्टनर के साथ रहने वाले बुजुर्गों का अनुपात आज लगभग 50% है। वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में यह आंकड़ा 37% का है। (साभारः www.bhaskar.com)

मर्मस्पर्शी कथा

वापसी

पारिवारिक ताने–बाने को दर्शाती प्रसिद्ध लेखिका उषा प्रियंवदा की लोकप्रिय कहानी के अंश

गजाधर बाबू ने कमरे में जमा सामान पर एक नजर दौड़ाई–दो बक्स, डोलची, बालटी–''यह डिब्बा कैसा है, गनेशी?" उन्होंने पूछा। गनेशी बिस्तर बाँधता हुआ, कुछ गर्व, कुछ दुःख, कुछ लज्जा से बोला–"घरवाली ने साथ को कुछ बेसन के लड्डू रख दिए हैं। कहा, बाबू जी को पसंद थे। अब कहाँ हम गरीब लोग, आपकी कुछ खातिर कर पाएँगे।" घर जाने की खुशी में भी गजाधर बाबू ने एक विषाद का अनुभव किया, जैसे एक परिचित, स्नेही, आदरमय, सहज संसार से उनका नाता टूट रहा हो। "कभी–कभी हम लोगों की भी खबर लेते रहिएगा।'' गनेशी बोला। "कभी कुछ जरूरत हो तो लिखना गनेशी! इस अगहन तक बिटिया की शादी कर दो।" गनेशी ने अँगोछे के छोर से आँखें पोंछीं– "अब आप लोग सहारा न देंगे, तो कौन देगा? आप यहाँ रहते तो कुछ हौसला रहता।"

गजाधर बाबू चलने को तैयार बैठे थे। रेलवे क्वार्टर का यह कमरा, जिसमें उन्होंने कितने वर्ष बिताए थे, उनका सामान हट जाने से कुरूप और नग्न लग रहा था। आँगन में रोपे पौधे भी जान–पहचान के लोग ले गए थे और

चित्र: thegoldentories

मर्मस्पर्शी कथा

जगह–जगह मिट्टी बिखरी हुई थी, पर पत्नी, बाल–बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह बिछोह एक दुर्बल लहर की तरह उठकर विलीन हो गया।

गजाधर बाबू खुश थे, बहुत खुश। पैंतीस साल की नौकरी के बाद वह रिटायर होकर जा रहे थे। इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे। संसार की दृष्टि में उनका जीवन सफल कहा जा सकता था। उन्होंने शहर में एक मकान बनवा लिया था, बड़े लड़के अमर और लड़की कांति की शादियाँ कर दी थीं, दो बच्चे ऊँची कक्षाओं में पढ़ रहे थे। गजाधर बाबू नौकरी के कारण प्रायः छोटे स्टेशनों पर रहे और उनके बच्चे और पत्नी शहर में, जिससे पढ़ाई में बाधा न हो। गजाधर बाबू स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी भी। जब परिवार साथ था, ड्यूटी से लौटकर बच्चों से हँसते–बोलते, पत्नी से कुछ मनोविनोद करते। उन सबके चले जाने से उनके जीवन में सूनापन भर उठा। गजाधर बाबू को तब हर छोटी बात भी याद आती और वह उदास हो उठते "अब कितने वर्षों बाद वह अवसर आया था, जब वह फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे।

टोपी उतारकर गजाधर बाबू ने चारपाई पर रख दी, जूते खोलकर नीचे खिसका दिए, अंदर से रह–रहकर कहकहों की आवाज आ रही थी। इतवार का दिन था और उनके सब बच्चे इकट्ठे होकर नाश्ता कर रहे थे। गजाधर बाबू के सूखे चेहरे पर स्निग्ध मुसकान आ गई, उसी तरह मुसकराते हुए वह बिना खाँसे अंदर चले आए। उन्होंने देखा कि नरेंद्र कमर पर हाथ रखे शायद गत रात्रि की फिल्म में देखे गए किसी नृत्य की नकल कर रहा था और बसंती हँस–हँसकर दुहरी हो रही थी। अमर की बहू को अपने तन–बदन, आँचल या घूँघट का कोई होश न था और वह उन्मुक्त रूप से हँस रही थी। गजाधर बाबू को देखते ही नरेंद्र धप–से बैठ गया और चाय का प्याला उठाकर मुँह से लगा लिया। बहू को होश आया और उसने झट से माथा ढक लिया, केवल बसंती का शरीर रह–रहकर हँसी दबाने के प्रयत्न में हिलता रहा। गजाधर बाबू ने मुसकराते हुए उन लोगों को देखा। फिर कहा– "क्यों नरेंद्र, क्या नकल हो रही है?" "कुछ नहीं बाबू जी!" नरेंद्र ने सिटपिटाकर कहा। गजाधर बाबू ने चाहा था कि वह भी इस मनोविनोद में भाग लेते, पर उनके आते ही जैसे सब कुंठित हो चुप हो गए। उससे उनके मन में थोड़ी–सी खिन्नता उपज आई। बैठते हुए बोले– "बसंती, चाय मुझे भी देना। तुम्हारी अम्मा की पूजा अभी चल रही है। क्या?" बसंती ने माँ की कोठरी की ओर देखा– "अभी आती ही होंगी," और प्याले में उनके लिए चाय छानने लगी। गजाधर बाबू ने एक घूँट चाय पी, फिर कहा– "बिट्टी–चाय तो फीका है।""लाइए, चीनी और डाल दें।" बसंती बोली। "रहने दो, तुम्हारी अम्मा जब आएगी, तभी पी लूंगा।" थोड़ी देर में उनकी पत्नी हाथ में अर्घ्य का लोटा लिए निकली और अशुद्ध स्तुति कहते हुए तुलसी में डाल दिया। उन्हें देखते ही बसंती भी उठ गई। पत्नी ने आकर गजाधर बाबू को देखा और कहा– "अरे, आप अकेले बैठे हैं, ये सब कहाँ गए?" गजाधर बाबू के मन में फाँस–सी करक उठी– "अपने–अपने काम में लग गए हैं, आखिर बच्चे ही हैं।"

पत्नी आकर चौके में बैठ गई, उन्होंने नाक–भौं चढ़ाकर चारों ओर जूठे बर्तनों को देखा। फिर कहा–"सारे में जूठे बर्तन पड़े हैं। इस घर में धर्म–कर्म कुछ नहीं। पूजा करके सीधे चौके में घुसो।" फिर उन्होंने नौकर को पुकारा, जब उत्तर न मिला तो एक बार और उच्च स्वर में, फिर पति की ओर देखकर बोलीं– "बहू ने भेजा होगा बाजार।" और एक लंबी साँस लेकर चुप हो गई। गजाधर बाबू बैठकर चाय और नाश्ते का इंतजार करते रहे। उन्हें अचानक ही गनेशी की याद आ गई। रोज सुबह, पैसेंजर आने से पहले वह गरम–गरम पूरियाँ और जलेबी बनाता था। गजाधर बाबू जब तक उठकर तैयार होते, उनके लिए जलेबियाँ और चाय लाकर रख देता था। चाय भी कितनी बढ़िया, काँच के गिलास में ऊपर तक भरी लबालब, पूरे ढाई चम्मच चीनी और गाढ़ी मलाई। पैसेंजर भले ही रानीपुर लेट पहुँचे, गनेशी ने चाय पहुँचाने में कभी देर नहीं की। क्या मजाल कि कभी उससे कुछ कहना पड़े। पत्नी का शिकायत–भरा स्वर सुन उनके विचारों में व्याघात पहुँचा। वह कह रही थीं–"सारा दिन इसी खिचखिच में निकल जाता है। इस गृहस्थी का धंधा पीटते–पीटते उमर बीत गई। कोई जरा हाथ भी नहीं बँटाता।"

"बहू क्या किया करती है?" गजाधर बाबू ने पूछा। "पड़ी रहती है। बसंती को तो, फिर कहो कि कॉलेज जाना होता है।" गजाधर बाबू ने जोश में आकर बसंती को आवाज दी। बसंती भाभी के कमरे से निकली तो गजाधर बाबू ने कहा– "बसंती, आज से शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनाएगी।" बसंती मुँह लटकाकर बोली–" बाबू जी, पढ़ना भी तो होता है।" गजाधर बाबू ने प्यार से समझाया–"तुम सुबह पढ़ लिया करो। तुम्हारी माँ बूढ़ी हुई, उनके शरीर में अब वह शक्ति नहीं बची है। तुम हो, तुम्हारी भाभी हैं, दोनों को मिलकर काम में हाथ बँटाना चाहिए।" बसंती चुप रही। उसके जाने के बाद उसकी माँ ने धीरे से कहा–"पढ़ने का तो बहाना है। कभी जी ही नहीं लगता। लगे कैसे? शीला से ही फुरसत नहीं, बड़े–बड़े लड़के हैं उनके घर में, हर वक्त वहाँ घुसा रहना, मुझे नहीं सुहाता। मना करूँ तो सुनती नहीं।"

नाश्ता कर गजाधर बाबू बैठक में चले गए। घर छोटा था और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबंध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू

मर्मस्पर्शी कथा

के लिए पतली–सी चारपाई डाल दी गई थी। उनकी पत्नी के पास अंदर एक छोटा कमरा अवश्य था, पर वह एक ओर अचारों के मर्तबान, दाल, चावल के कनस्तर और घी के डिब्बों से घिरा था, दूसरी ओर पुरानी रजाइयाँ, दरियों में लिपटी और रस्सी से बँधी रखी थीं, उसके पास एक बड़े–से टीन के बक्स में घर भर के गरम कपड़े थे। बीच में एक अलगनी बँधी हुई थी, जिस पर प्रायः बसंती के कपड़े लापरवाही से पड़े रहते थे। वह भरसक उस कमरे में नहीं जाते थे। घर का दूसरा कमरा अमर और उसकी बहू के पास था, तीसरा कमरा, जो सामने की ओर था, बैठक था। गजाधर बाबू के आने से पहले उसमें अमर की ससुराल से आया बेंत की तीन कुर्सियों का सेट पड़ा था, कुर्सियों पर नीली गद्दियाँ और बहू के हाथों के कड़े कुशन थे।

जब कभी उनकी पत्नी को कोई लंबी शिकायत करनी होती, तो अपनी चटाई बैठक में डाल पड़ जाती थीं। वह एक दिन चटाई लेकर आ गईं। गजाधर बाबू ने घर–गृहस्थी की बातें छेड़ीं, वह घर का रवैया देख रहे थे। बहुत हल्के–से उन्होंने कहा कि अब हाथ में पैसा कम रहेगा, कुछ खर्च कम होना चाहिए। "सभी खर्च तो वाजिब–वाजिब हैं, किसका पेट काटूँ? यही जोड़–गाँठ करते–करते बूढ़ी हो गई, न मन का पहना, न ओढ़ा।" गजाधर बाबू ने आहत, विस्मित दृष्टि से पत्नी को देखा। उनसे अपनी हैसियत छिपी न थी। उनकी पत्नी तंगी का अनुभव कर उसका उल्लेख करतीं, यह स्वाभाविक था, लेकिन उनमें सहानुभूति का पूर्ण अभाव गजाधर बाबू को बहुत खटका।

रात का भोजन बसंती ने जानबूझकर ऐसा बनाया था कि कौर तक निगला न जा सके। गजाधर बाबू चुपचाप खाकर उठ गए, पर नरेंद्र थाली सरकाकर उठ खड़ा हुआ और बोला– "मैं ऐसा खाना नहीं खा सकता।" बसंती तुनककर बोली– "तो न खाओ, कौन तुम्हारी खुशामद करता है।" "तुमसे खाना बनाने को कहा किसने था?" नरेंद्र चिल्लाया। "बाबू जी ने।" "बाबू जी को बैठे–बैठे यही सूझता है।" गजाधर बाबू ने बाद में पत्नी से कहा– "इतनी बड़ी लड़की हो गई और उसे खाना बनाने तक का शऊर नहीं आया!" "अरे, आता तो सब कुछ है, करना नहीं चाहती।" पत्नी ने उत्तर दिया। अगली शाम माँ को रसोई में देख, कपड़े बदलकर बसंती बाहर आई, तो बैठक से गजाधर बाबू ने टोक दिया– "कहाँ जा रही हो?" "पड़ोस में, शीला के घर।" बसंती ने कहा। "कोई जरूरत नहीं है, अंदर जाकर पढ़ो।" गजाधर बाबू ने कड़े स्वर में कहा। कि अमर अलग रहने की सोच रहा है।

"क्यों?" गजाधर बाबू ने चकित होकर पूछा। पत्नी ने साफ–साफ उत्तर नहीं दिया। अमर और उसकी बहू की शिकायतें बहुत थीं। उनका कहना था कि गजाधर बाबू हमेशा बैठक में ही पड़े रहते हैं, कोई आने–जाने वाला हो तो कहीं बिठाने की जगह नहीं। अमर को अब भी वह छोटा–सा समझते थे और मौके–बेमौके टोक देते थे। बहू को काम करना पड़ता था और सास जब–तब फूहड़पन पर ताने देती रहती थीं। "हमारे आने से पहले भी कभी ऐसी बात हुई

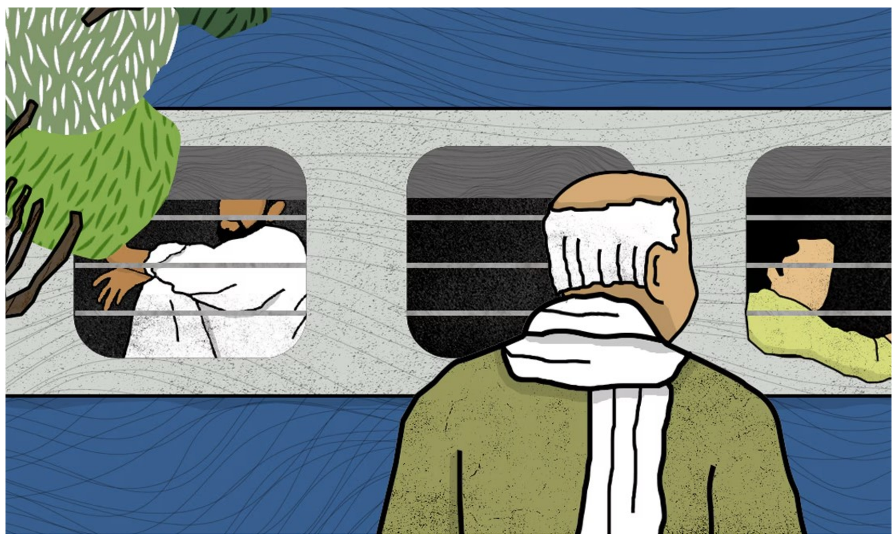

कुछ देर अनिश्चित खड़े रहकर बसंती अंदर चली गई। गजाधर बाबू शाम को रोज टहलने चले जाते थे, लौटकर आए तो पत्नी ने कहा– "क्या कह दिया बसंती से? शाम से मुँह लपेटे पड़ी है। खाना भी नहीं खाया।" गजाधर बाबू खिन्न हो आए। पत्नी की बात का उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। उन्होंने मन में निश्चय कर लिया कि बसंती की शादी जल्दी ही कर देनी है। उस दिन के बाद बसंती पिता से बची–बची रहने लगी। जाना होता तो पिछवाड़े से जाती। गजाधर बाबू ने दो–एक बार पत्नी से पूछा तो उत्तर मिला–"रूठी हुई है।" गजाधर बाबू को रोष हुआ। लड़की के इतने मिजाज, जाने को रोक दिया तो पिता से बोलेगी नहीं। फिर उनकी पत्नी ने ही सूचना दी थी?" गजाधर बाबू ने पूछा। पत्नी ने सिर हिलाकर बताया कि नहीं। पहले अमर घर का मालिक बनकर रहता था, बहू को कोई रोक–टोक न थी, अमर के दोस्तों का प्रायः यहीं अड्डा जमा रहता था और अंदर से नाश्ता–चाय तैयार होकर जाता रहता था। बसंती को भी वही अच्छा लगता था।गजाधर बाबू ने बहुत धीरे से कहा– "अमर से कहो, जल्दबाजी की कोई जरूरत नहीं है।"

अगले दिन वह सुबह घूमकर लौटे तो उन्होंने पाया कि बैठक में उनकी चारपाई नहीं है। अंदर जाकर पूछने ही वाले थे कि उनकी दृष्टि रसोई के अंदर बैठी पत्नी पर पड़ी। उन्होंने यह कहने को मुँह खोला कि बहू कहाँ है, पर कुछ याद कर चुप हो गए। पत्नी की कोठरी में झाँका तो

मर्मस्पर्शी कथा

अचार, रजाइयाँ और कनस्तरों के मध्य अपनी चारपाई लगी पाई। गजाधर बाबू ने कोट उतारा और कहीं टाँगने को दीवार पर नजर दौड़ाई। फिर उसे मोड़कर अलगनी के कुछ कपड़े खिसकाकर, एक किनारे टाँग दिया। कुछ खाए बिना ही अपनी चारपाई पर लेट गए। गजाधर बाबू को अपना बड़ा–सा क्वार्टर याद आ गया। निश्चिंत जीवन, सुबह पैसेंजर ट्रेन आने पर स्टेशन की चहल–पहल, चिर–परिचित चेहरे और पटरी पर रेल के पहियों की खट्–खट्, जो उनके लिए मधुर संगीत की तरह थी। तूफान और डाकगाड़ी के इंजनों की चिंघाड़ उनकी अकेली रातों की साथी थी। सेठ रामजीमल के मिल के कुछ लोग कभी–कभी पास आ बैठते, वही उनका दायरा था, वही उनके साथी। वह जीवन अब उन्हें एक खोई निधि–सा प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि वह जिंदगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से उन्हें एक बूंद भी न मिली।

अचानक ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात में दखल न देंगे। यदि गृहस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह नहीं है, तो यहीं पड़े रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गई तो वहाँ चले जाएँगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं, तो अपने ही घर में परदेसी की तरह पड़े रहेंगे और उस दिन के बाद सचमुच गजाधर बाबू कुछ नहीं बोले। नरेंद्र रुपए माँगने आया तो बिना कारण पूछे उसे रुपये दे दिए। बसंती काफी अँधेरा हो जाने के बाद भी पड़ोस में रही तो भी उन्होंने कुछ नहीं कहा, पर उन्हें सबसे बड़ा गम यह था कि उनकी पत्नी ने भी उनमें कुछ परिवर्तन लक्ष्य नहीं किया। वह मन–ही–मन कितना भार ढो रहे हैं, इससे वह अनजान ही बनी रहीं, बल्कि उन्हें पति के घर के मामले में हस्तक्षेप न करने के कारण शांति ही थी। कभी–कभी वह कह भी उठतीं, "ठीक ही है, आप बीच में न पड़ा कीजिए, बच्चे बड़े हो गए हैं, हमारा जो कर्तव्य था, कर रहे हैं।

गजाधर बाबू ने आहत दृष्टि से पत्नी को देखा। उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी और बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त–मात्र हैं। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से पत्नी माँग में सिंदूर डालने की अधिकारिणी है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा है, उसके सामने वह दो वक्त भोजन की थाली रख देने से सारे कर्तव्यों से छुट्टी पा जाती है। वह घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई है कि अब वही उसकी संपूर्ण दुनिया बन गई है।

इतने सब निश्चयों के बावजूद भी एक दिन बीच में दखल दे बैठे। पत्नी स्वभावानुसार नौकर की शिकायत कर रही थीं–"कितना कामचोर है, बाजार की भी चीज में पैसा बनाता है, खाने बैठता है, तो खाता ही चला जाता है।" गजाधर बाबू को बराबर यह महसूस होता रहता था कि

उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी और बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त–मात्र हैं।

उनके घर का रहन–सहन और खर्च उनकी हैसियत से कहीं ज्यादा है। पत्नी की बात सुनकर कहने लगे कि छोटा–मोटा काम हैं, घर में तीन मर्द हैं, कोई–न–कोई कर ही देगा। उन्होंने उसी दिन नौकर का हिसाब कर दिया। अमर दफ्तर से आया तो नौकर को पुकारने लगा। अमर की बहू बोली– "बाबू जी ने नौकर छुड़ा दिया है।" "क्यों?" "कहते हैं खर्च बहुत है।"

यह वार्तालाप बहुत सीधा–सा था, पर जिस टोन में बहू बोली, गजाधर बाबू को खटक गया। उस दिन जी भारी होने के कारण गजाधर बाबू टहलने नहीं गए थे। बत्ती भी नहीं जलाई थी। इस बात से बेखबर नरेंद्र माँ से कहने लगा– "अम्माँ, तुम बाबू जी से कहती क्यों नहीं? बैठे बिठाए कुछ नहीं तो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर बाबू जी यह समझें कि मैं साइकिल पर गेहूँ रख आटा पिसाने जाऊँगा, तो मुझसे यह नहीं होगा।" "हाँ अम्माँ" बसंती का स्वर था– "मैं कॉलेज भी जाऊँ और लौटकर घर में झाड़ू भी लगाऊँ, यह मेरे बस की बात नहीं है।" "बूढ़े आदमी हैं"–अमर भुनभुनाया– "चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते हैं?" पत्नी ने बड़े व्यंग्य से कहा– "और कुछ नहीं सूझा, तो तुम्हारी बहू को ही चौके में भेज दिया। वह गई तो पंद्रह दिन का राशन पाँच दिन में बनाकर रख दिया।"

गजाधर बाबू चिट्ठी हाथ में लिए अंदर आए और पत्नी को पुकारा। गजाधर बाबू ने बिना किसी भूमिका के कहा– "मुझे सेठ रामजीमल की चीनी मिल में नौकरी मिल गई है। खाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आएँ, वही अच्छा है। उन्होंने तो पहले ही कहा था, मैंने ही मना कर दिया था। फिर कुछ रुककर, जैसे बुझी हुई आग में एक चिनगारी चमक उठे, उन्होंने धीमे स्वर में कहा– "मैंने सोचा था कि बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद अवकाश पाकर परिवार के साथ रहूँगा। खैर, परसों जाना है। तुम भी चलोगी?" "मैं?" पत्नी ने सकपकाकर कहा– "मैं चलूँगी तो यहाँ का क्या होगा? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की।" बात बीच में काटकर गजाधर बाबू ने हताश स्वर में कहा–"ठीक है, तुम यहीं रहो। मैंने तो ऐसे ही कहा था।" और गहरे मौन में डूब गए।

नरेंद्र ने बड़ी तत्परता से बिस्तर बाँधा और रिक्शा बुला लाया। गजाधर बाबू का टीन का बक्सा और पतला–सा बिस्तर उस पर रख दिया गया। नाश्ते के लिए लड्डू और मठरी की डलिया हाथ में लिए गजाधर बाबू रिक्शे पर बैठ गए। एक दृष्टि उन्होंने अपने परिवार पर डाली। फिर दूसरी ओर देखने लगे और रिक्शा चल पड़ा। उनके जाने के बाद सब अंदर लौट आए। बहू ने अमर से पूछा– "सिनेमा ले चलिएगा न?" बसंती ने उछलकर कहा–"भइया, हमें भी।" गजाधर बाबू की पत्नी सीधे चौके में चली गई। फिर बाहर आकर कहा–"अरे नरेंद्र, बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।"

साहित्य के दर्पण में

प्रेमचंद की कहानियों में पारिवारिक मूल्यबोध

प्रेमचंद की रचनात्मकता का प्रमुख आयाम परिवार के प्रति उनकी मोहग्रस्तता है। उन्होंने स्वयं परिवार में सबके साथ रहते हुए सुख–दु:ख और उठापटक को अनुभव किया था। परिवार के महत्व से वे भलीभांति परिचित थे और इसीलिए उनकी अधिकांश कहानियां परिवारनिष्ठ हैं।

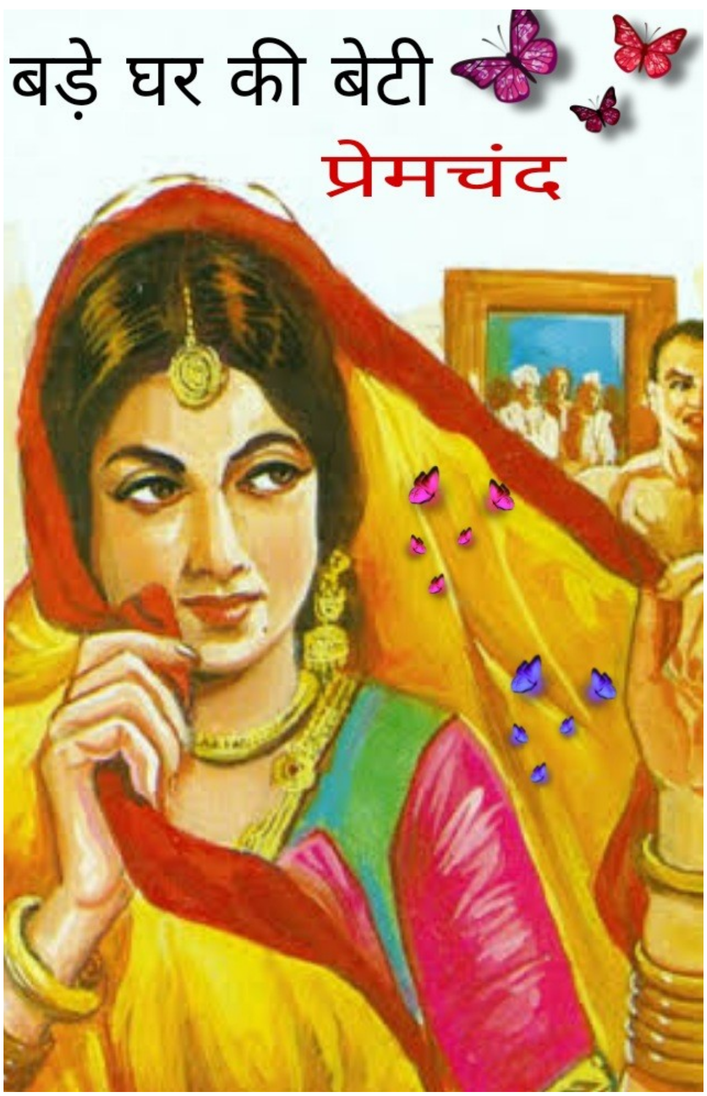

परिवार मानव समाज की सर्वाधिक प्राचीन, छोटी किंतु सुसंगठित संस्था है। पति–पत्नी और उनकी संतान इसके निर्माता होते हैं। वैश्विक सभ्यता और संस्कृति के विकास से प्रभावित आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक परिवेश पारिवारिक व्यवस्था को बदलते हैं। मशीनीकरण की दौड़ में स्वयं मशीन बन गए मनुष्य की जिंदगी में समयाभाव और आर्थिक सीमितता ने उसे स्वार्थी और आत्मकेंद्रित बना दिया है। अब संयुक्त परिवार एकल होते जा रहे हैं जिनमें संबंधों के रेशमी धागे उसे उलझाने वाले लगते हैं। वह शीघ्रातिशीघ्र उनसे मुक्त होना चाहता है। प्रेमचंद की रचनात्मकता का प्रमुख आयाम परिवार के प्रति उनकी मोहग्रस्तता है। उन्होंने स्वयं परिवार में सबके साथ रहते हुए सुख–दु:ख और उठापटक को अनुभव किया था। परिवार के महत्व से वे भलीभांति परिचित थे और इसीलिए उनकी अधिकांश कहानियां परिवारनिष्ठ हैं। प्रेमचंद के कथनानुसार–"हमारी सभ्यता में सम्मिलित कुटुंब एक प्रधान अंग था। पश्चिम सभ्यता में परिवार का अर्थ था–केवल स्त्री और पुरुष। दोनों में बुराइयां और भलाइयां दोनों ही हैं, पर जहां एक में सेवा और त्याग प्रधान है, वहां दूसरे में स्वार्थ और संकीर्णता।"(1)(विविध प्रसंग,भाग 3 ,प्रेमचन्द,पृष्ठ 193)।

प्रेमचंद के समय में संयुक्त परिवार की प्रथा थी। परिवार का वयोवृद्ध पुरुष मुखिया होता था। शेष सभी सदस्य उसके अनुशासन में रहते थे। सबकी कमाई परिवार की कमाई थी जिस पर मुखिया का नियंत्रण होता था। उसकी मृत्यु के उपरांत सारी संपति बिना किसी भेदभाव के उसके पुत्रों में बंट जाती थी। पुरुष वर्चस्व वाले ऐसे परिवारों में स्त्री की स्थिति दोयम होती थी। सामाजिक नैतिक जकड़नों में जकड़ी नारी सामान्य मानवीय अधिकारों से वंचित पशुवत जीवन जीती थी। कौमार्यावस्था में पिता और भाइयों के तथा विवाहोपरांत पति के संरक्षण में जीना उसकी नियति थी। पति परित्यक्त स्त्री की स्थिति धोबी के कुत्ते जैसी थी जिसे घर–घाट दोनों में केवल लांछित और दुत्कारा जाता था। सतीत्व और मातृत्व उसके आभूषण थे। निस्संतान, केवल कन्या की जन्मदात्री नारी को अन्तहीन लांछन सहने पड़ते थे। पर्दा प्रथा, बाल विवाह, दहेज, अनमेल विवाह, वेश्यावृति जैसी कुप्रथाएं प्रचलित थीं जिनमें अपने ही बुने जाल में फंसी मकड़ी की भांति स्त्री घुट–घुटकर जीती थी। सामंतवादी अर्थव्यवस्था का स्थान पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के लेते ही संयुक्त परिवार विघटित

होने लगे तथा उनका स्थान आणविक और एकल परिवार लेने लगे। प्रेमचंद ने स्वयं भी संयुक्त परिवारों को टूटते देखा था किंतु ग्रामीण अर्थव्यवस्था में संयुक्त परिवारों के महत्व को देख उन्होंने उसका ही पोषण–समर्थन किया। उन्होंने अपनी कहानियों में प्रमुख पात्रों के पारिवारिक जीवन के चित्र बड़े ही मनोयोग से लिपिबद्ध किए हैं। वे मानते थे कि परिवार मनुष्य के जीवनादर्श एवं विश्व दृष्टि को परखने वाला प्रथम स्थान होता है। पारिवारिक संस्कार उसके व्यक्तित्व को गढ़ते हैं और उस पर स्थाई प्रभाव डालते हैं।

'सप्त सरोज' (19 17) में संकलित 'बड़े घर की बेटी' की कथा नायिका उच्चकुलोत्पन्न आनंदी में तदनुरुप श्रेष्ठ संस्कार हैं। गौरीपुर के जमीदार बेनी माधव के संयुक्त परिवार की बड़ी बहू के रूप में देवर लाल बिहारी की उद्दंडता, कर्कशता एवं खड़ाऊ खींचकर मारने से उसका स्वाभिमान आहत होता है। उसका सर्वांग जल उठता है और वह उसे उचित मार्ग दिखाने का निश्चय करती है। पति के सम्मुख सारी बात का बतंगड़ बना कर इस प्रकार प्रस्तुत करती है कि वह भी भाई का मुंह ना देखने की कसम खाता है। जहां आग लगी हो वहां जमालो दूर खड़ी तमाशा देखती ही है। जमीदार परिवार की कलह भी तमाशबीनों को जोड़ लेती है। हुक्का चिलम की तलब तो महज बहाना होती है। अपने व्यवहार से ग्लानि से भरा लाल बिहारी घर टूटने की अप्रिय स्थिति से मुक्ति पाने के लिए स्वयं घर छोड़ने का निर्णय लेता है। जाते–जाते भाभी से क्षमा याचना करता है। सामान्यतः ऐसे झगड़ों का अंतिम परिणाम संयुक्त परिवारों का विघटन होता है किंतु आनंदी के बड़े घर के संस्कार उभरते हैं। वह परिवार को टूटने नहीं देती। देवर को क्षमा कर उसके परिताप को महत्व देती है तथा पति के क्रोध को शांत कर बिगड़ी स्थिति को सामान्य कर देती है। कलह की कालिमा छटते ही परिवार में सुख शांति छा जाती हैं। यह कहानी प्रेमचंद को भी अत्यंत प्रिय थी। वे मानते थे कि परिवार एकल हो या संयुक्त, उच्च मध्य या निम्नवर्गीय सबमें समस्याएं होती हैं। जहां चार बर्तन होते हैं वे खड़कते भी हैं पर जहां वे खड़कने के बाद सीधे हो जाएं तो अनिष्टकारी नहीं होते। इसी प्रकार स्वार्थ और उदारता के अन्तःसंघर्ष में उन्नत भावनाएं ही बीस ठहरती हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में संयुक्त परिवार का विघटन अत्यंत घातक था।

एक ही परिवार में दो चूल्हे जलते देख निराहार रह जाने वाले भाई एक–दूसरे को देख–देख कर रोते हैं किंतु धीरे–धीरे रोने का स्थान हंसी और ताली ले लेती है। दोनों भाई जब लड़के थे, तब एक को रोते देख दूसरा भी रोने लगता था, तब वह नादान बेसमझ और भोले थे। आज एक को रोते देख दूसरा हँसता और तालियाँ बजाता। अब वह समझदार और बुद्विमान हो गए थे।

'अलग्योझा' कहानी में उसके दुष्परिणामों का अंकन मिलता है। पिता की मृत्यु के पश्चात छोटे सौतेले भाइयों का संतानवत पालन पोषण करने वाला रघ्घु कलहप्रिय पत्नी मुलिया के कारण चाहकर भी परिवार को टूटने से नहीं बचा पाता। विमाता पन्ना का अलग्योझा करने के निर्णय के साथ आंगन में दीवार ही नहीं खींचती बल्कि बैल बधिए भी बंट जाते हैं। मुलिया की स्वार्थपरता और अदूरदर्शिता के कारण अलग–थलग पड़ा रघ्घु अकेले अपने खेत नहीं संभाल पाता। ऋणग्रस्तता और कठोर परिश्रम से वह रोगग्रस्त हो प्राण त्याग देता है। मुलिया और उसके दो छोटे बच्चों को निस्सहाय ना छोड़कर पन्ना ही पुनः टूटे परिवार को जोड़ती है। विवेच्य कहानी के माध्यम से लेखक ने बताया है कि व्यक्तिगत स्वार्थ परिवार के बिखराव का कारण बनता है। कहीं–कहीं यह परिवारिक कलह अत्यंत भयंकर रूप धारण कर लेती है।

'दो भाई' कहानी में दो शरीर एक प्राण जैसे दो भाई केदार और माधव का प्रगाढ़ प्रेम केदार की पत्नी चंपा की ईर्ष्याग्नि में खाक हो जाता है। प्रारंभ में एक ही परिवार में दो चूल्हे जलते देख निराहार रह जाने वाले भाई एक–दूसरे को देख–देख कर रोते हैं किंतु धीरे–धीरे रोने का स्थान हंसी और ताली ले लेती है। "दोनों भाई जब लड़के थे, तब एक को रोते देख दूसरा भी रोने लगता था, तब वह नादान बेसमझ और भोले थे। आज एक को रोते देख दूसरा हँसता और तालियाँ बजाता। अब वह समझदार और बुद्विमान हो गए थे।" (2)(दो भाई, मानसरोवर भाग 7,पृष्ठ 216) माधव की विपत्ति से भी केदार नहीं पसीजता और उसके हिस्से के घर को रेहन पर रखकर ही उसे पैसा देता है। उनका घर ही नहीं दिल भी बंट जाते हैं। पारिवारिक कलह के अतिरिक्त परस्पर सौहार्द्र का अभाव आत्मकेंद्रण एवं स्वार्थपरता, स्वामित्व की आकांक्षा तथा किसी सदस्य की अकर्मण्यता भी संयुक्त परिवार को विघटित करने के कारक होते हैं। 'बैर का अंत' कहानी में रामेश्वर की जमीन, उसमें और विश्वेश्वर में झगड़े का कारण बनती है। मन की खटास कोर्ट कचहरी तक पहुंचती है। विश्वेश्वर की जमीन रेहन रख दी जाती है। घर और स्त्री के गहने बिक जाते हैं तब फैसला उसके पक्ष में हो पाता है पर उसके मन में खटास पूर्ववत बनी रहती है।

संयुक्त परिवार का स्वामित्व कोई हंसी ठठ्ठा नहीं होता। 'स्वामिनी' कहानी में असमय वैधव्यग्रस्त पुत्रवधु रामप्यारी को उसका ससुर शिवदास घर की स्वामिनी बना उसके दुःख को कम करना चाहता है। वह सारा दिन सबकी आवश्यकताओं को

पूरा करती रहती है। घर चलाने के लिए अपने पर कटौती करने, गहने बेचने के अलावा उसके बाल भी पकने लगते हैं। कमर झुकने लगती है तथा आंखों से कम दिखने लगता है पर स्वामित्व की लालसा, यश और सम्मान उसे जिलाए रखता है। "मगर वह प्रसन्न थी। स्वामित्व का गौरव इन सारे जख्मों पर मरहम का काम करता था।" (3)(स्वामिनी, प्रेमचंद, मानसरोवर भाग 1, पृष्ठ 134)। संयुक्त परिवार में सभी सदस्यों की समान भागीदारी और कर्मठता अनिवार्य होती है अन्यथा परिवार टूटने में देर नहीं लगती। 'शंखनाद' कहानी में भानु चौधरी के संयुक्त परिवार का विघटन उनके छोटे पुत्र गुमान के आलस्य और अकर्मण्यता के कारण होता है। उसकी पत्नी परिवार की दासी मात्र बनकर रह जाती है। जेठानियों के व्यंग्यबाण भी उसे निरंतर आहत करते हैं। परिवार में सदस्यों की परस्पर कटुता भी परिवार को तोड़ती है। सास बहु में यदि छत्तीस का आंकड़ा हो तो परिवार की मजबूत दीवार को भी चटकते देर नहीं लगती। सास बहू को बेटी जैसा प्यार नहीं दे पाती और बहू सास को माता सदृश्य सम्मान नहीं देती। मानसरोवर भाग–2 में संकलित 'गृह नीति' कहानी में प्रेमचंद ने बहू–सास और मां के अंतर को स्पष्ट करते हुए लिखा है "मां प्यार करती है, सास शासन करती है। कितनी ही दयालु, सहनशील सतोगुणी स्त्री हो, सास बनते ही मानों ब्यायी हुई गाय हो जाती है। जिसे पुत्र से जितना ही ज्यादा प्रेम है, वह बहू पर उतनी ही निर्दयता से शासन करती है।"(4) (पृष्ठ 279) अब यह स्थिति और विकट हो गई है क्योंकि पति भी पत्नी की हिमायत लेने लगे हैं। मानसरोवर भाग–1 में संकलित 'झांसी' कहानी में पति कहता है–"अगर अम्मा ने अपनी सास की साड़ी धोई है, उनके पांव दबाये हैं, उनकी घुड़कियाँ खाई हैं तो आज वह पुराना हिसाब बहु से क्यों चुकाना चाहती हैं? उन्हें क्यों दिखाई नहीं देता कि अब समय बदल गया है। बहुएं अब भयवश सास की गुलामी नहीं करतीं। प्रेम से उनके सिर के बाल नोच लो, लेकिन जो रोब दिखाकर उनपर शासन करना चाहो तो वे दिन लद गए।" (5)(झांसी, पृष्ठ 166)।

विमाता कभी माता का स्थान नहीं ले पाती किन्तु 'विमाता' कहानी की नायिका अम्बा अवश्य इसका अपवाद है। स्वयं प्रेमचंद को विमाता का अपेक्षित स्नेह नहीं मिला और उनकी पहली पत्नी की भी उनसे नहीं बनी। गृहदाह, दूसरी शादी कहानियों में विमाता की विपरीत छवि देखने को मिलती है। मानसरोवर भाग–6 में संकलित गृहदाह कहानी में प्रेमचंद का कटु अनुभव ही व्यक्त हुआ है। "मातृहीन बालक संसार का सबसे करुणाजनक प्राणी है। दीन से दीन प्राणियों को भी ईश्वर का आधार होता है, जो उनके हृदय को संभालता रहता है। मातृ हीन बालक इस आधार से वंचित होता है। माता ही उसके जीवन का एकमात्र आधार होता है। माता के बिना वह पंखहीन पक्षी है।" (6)(गृहदाह, प्रेमचंद, मानसरोवर भाग 6, पृष्ठ 174)। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। इसी प्रकार एक ही घर में सौत की अवस्थिति उसे अखाड़ा बना देती है। 'सौत' और अग्निसमाधि इसी प्रकार की कहानियां हैं। (साभारः www.sahchar.com)

घातक बदलाव

कौन बना रहा महिलाओं को आक्रामक!

जब महिलाओं को उच्च तनाव और कम समर्थन वाली स्थितियों में धकेला जाता है– चाहे वह दुर्व्यवहार वाले घर हों या भ्रष्ट कार्यस्थल– तो उनकी प्रतिक्रियाओं में आक्रामकता के ऐसे रूप शामिल हो सकते हैं जिन्हें कभी मर्दाना माना जाता था। पुरुषों के विपरीत, जिनकी हिंसा बाहरी आक्रामकता से उपजी हो सकती है, महिलाओं की हिंसा अक्सर आघात से प्रेरित होती है। वर्षों तक भावनात्मक दमन, घरेलू दुर्व्यवहार या आर्थिक तंगी विस्फोटक या प्रतिशोधात्मक आक्रामकता के रूप में प्रकट हो सकती है।

इंदौर की सोनम रघुवंशी हो या मेरठ की मुस्कान रस्तोगी। बिजनौर की शिवानी या फिर भिवानी की रवीना। छोटे शहरों की इन युवा लड़कियों में एक ही बात सामान्य है और वो यह कि अपने रिश्तों से बाहर निकलने के लिए इन्होंने हिंसा का रास्ता अपनाया और अपने पतियों की नृशंस तरीके से हत्या कर दी या करवा दी।

महिलाओं के व्यवहार में पिछले कुछ सालों में एक बड़ा बदलाव देखा जा रहा है। यद्यपि समग्र अपराध आंकड़ों में पुरुषों की संख्या अभी भी महिलाओं से काफी अधिक है, तथापि महिलाओं द्वारा किए गए हिंसक अपराधों में पिछले दो दशकों में लगातार वृद्धि देखी गई है। भारत के राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के अनुसार, पिछले दस वर्षों में महिलाओं द्वारा अपराध में 25% से अधिक की वृद्धि हुई है। महिलाओं पर अब न केवल घरेलू हिंसा या आत्महत्या के लिए उकसाने के आरोप में मामला दर्ज किया जा रहा है, बल्कि उन पर हत्या, शारीरिक हमला, अपहरण और यहां तक कि आतंकवाद से संबंधित गतिविधियों के लिए भी मामला दर्ज किया जा रहा है। वैश्विक स्तर पर भी इसी तरह के पैटर्न सामने आ रहे हैं। अमेरिका, ब्रिटेन और ब्राजील जैसे देशों में हिंसक अपराधों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है, जिससे आपराधिक व्यवहार में लैंगिक रूढ़िवादिता को चुनौती मिल रही है।

बढ़ रहा है औरतों का गुस्सा

तहाशा एक हिप्नोथेरेपिस्ट (सम्मोहन चिकित्सक) और लाइफ कोच हैं। वो लोगों को बेहतर जीवन जीने के सलीके सिखाती हैं। उस घटना के बाद वो दुनिया भर की महिलाओं से संपर्क करती हैं। जूम मीटिंग के जरिए वो उन्हें बताती हैं कि किस तरह जोर से बोलकर, चीख कर अपने रोष को बाहर निकालना है। गैलप वर्ल्ड पोल में ऐसी ही महिलाओं को शामिल किया गया था। बीबीसी ने इसी सर्वे के 10 साल के डेटा का विश्लेषण किया। इसके मुताबिक महिलाएं पहले से ज्यादा गुस्सैल हो रही हैं। इस सर्वे में हर साल 150 देशों में एक लाख 20 हजार लोगों से बात की जाती है। उनसे दूसरी चीजों के साथ ये भी पूछा जाता है कि पिछले दिन वो कौन–सा इमोशन था जिसे आपने सबसे ज्यादा महसूस किया। इस दौरान ये पता चला कि गुस्सा, उदासी, अवसाद और घबराहट जैसे नकारात्मक एहसासों को पुरुषों के मुकाबले महिलाओं ने ज्यादा महसूस किया।

सर्वे के विश्लेषण में बीबीसी ने पाया कि 2012 के बाद हालांकि उदासी और घबराहट जैसे भाव पुरुष भी ज्यादा महसूस कर रहे हैं, लेकिन महिलाओं के मामले में इसका ग्राफ ज्यादा ऊपर चढ़ा है। जहां तक गुस्से और अवसाद का सवाल है, इस मामले में महिलाओं ओर पुरुषों के एहसास के बीच का अंतर ज्यादा बढ़ रहा है। 2012 में पुरुष और महिलाएं गुस्से और अवसाद का शिकार होने के मामले में बराबर थे। अब नौ साल बाद इस सर्वे से पता चलता है कि पुरुषों के मुकाबले महिलाओं को गुस्सा 6 फीसदी ज्यादा आ रहा है। अवसाद के मामले में भी महिलाओं की स्थिति कुछ ऐसी ही है। ये वृद्धि महामारी के 2 सालों में ज्यादा तेजी से हुई है।

अमेरिका की रहने वाली सारा हरमन एक चिकित्सक हैं। 2021 की शुरुआत में इन्होंने अपनी महिला मरीजों का एक ग्रुप बनाया जिनके साथ फील्ड में खड़ी होकर वो जोर से चीखती हैं। सारा कहती हैं, ''मैं दो छोटे बच्चों की मां हूं। वर्क फ्रॉम होम करते हुए मैंने महसूस किया कि मेरे अंदर गहरी निराशा और रोष लगातार बढ़ रहा है। इसके एक साल बाद वो अपने ग्रुप के साथ फील्ड में थीं। इसी दौरान उनकी चीख का एक वीडियो वायरल हो गया। सारा बताती हैं कि वो वीडियो एक जर्नलिस्ट ने अपनी मां के ऑनलाइन ग्रुप से उठाया था। (साभारः बीबीसी हिंदी)

आज, महिलाएं पिछली पीढ़ियों की तुलना में ज्यादा स्वतंत्र, ज्यादा दृश्यमान और ज्यादा मुखर हैं। इस बदलाव के साथ, उन्हें उन्हीं तनावों, असमानताओं और सामाजिक कुंठाओं का सामना करना पड़ रहा है जो अक्सर पुरुषों को हिंसा की ओर धकेलती हैं। ऐसी दुनिया में, जो अक्सर शक्ति को कमजोरी के विरुद्ध खड़ा करती है, कुछ महिलाएं अब आक्रामक व्यवहार को प्रतिबिंबित कर रही हैं, जिसे कभी केवल पुरुषों के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता था– इसलिए नहीं कि वे स्वाभाविक रूप से हिंसक हैं, बल्कि इसलिए कि उनका वातावरण बदल गया है।

2015 में हुए एक अध्ययन में पाया गया कि जब महिलाएं और पुरुष एक निर्णायक समूह में अपनी राय व्यक्त करते हैं तो पुरुषों में क्रोध का भाव ज्यादा देखने को मिलता है, जबकि महिलाएं अपना गुस्सा जाहिर नहीं करती हैं। पर, लंबे समय तक अंदर दबा गुस्सा अचानक बड़े विस्फोट के रूप में बाहर आता है। दरअसल, क्रोध ऐसी ऊर्जा है, जिसके लिए तनाव बढ़ाने वाला कोर्टिसोल हार्मोन भी काफी हद तक जिम्मेदार होता है। जब लंबे समय तक हम अपने गुस्से को दबाए रखते हैं, तो यह हमारी सेहत के साथ–साथ रिश्तों पर भी बहुत नकारात्मक प्रभाव डालने लगता है। लंदन की प्रसिद्ध मनोचिकित्सक जेनिफर कॉक्स अपनी किताब 'वुमेन आर एंग्रीः व्हाई योर रेज इज हाइडिंग एंड हाउ टू लेट इट आउट' में लिखती हैं कि ''सदियों से गुस्सा दिखाने वाली महिलाओं को अत्यधिक भावुक, संवेदनशील और मानसिक रूप से अस्थिर माना जाता रहा है। जबकि प्यार, खुशी और रोमांच के भाव की तरह ही गुस्से का भाव भी पूरी तरह सामान्य है।'' इसलिए यह आवश्यक है कि बिना लिंग भेद किए क्रोध के भाव को भी स्वीकार किया जाए।

समाजशास्त्री कहते हैं कि जब महिलाओं को उच्च तनाव और कम समर्थन वाली स्थितियों में धकेला जाता है– चाहे वह दुर्व्यवहार वाले घर हों या भ्रष्ट कार्यस्थल– तो उनकी प्रतिक्रियाओं में आक्रामकता के ऐसे रूप शामिल हो सकते हैं जिन्हें कभी मर्दाना माना जाता था। पुरुषों के विपरीत, जिनकी हिंसा बाहरी आक्रामकता से उपजी हो सकती है, महिलाओं की हिंसा अक्सर आघात से प्रेरित होती है। वर्षों तक भावनात्मक दमन, घरेलू दुर्व्यवहार या आर्थिक तंगी विस्फोटक या प्रतिशोधात्मक आक्रामकता के रूप में प्रकट हो सकती है। स्ट्रीमिंग प्लेटफॉर्म और सोशल मीडिया के उदय ने भी इसमें भूमिका निभाई है। किलिंग ईव, मिर्जापुर या दिल्ली क्राइम जैसी महिला पात्र अब पीड़ित नहीं हैं, वे अपराधी, निगरानीकर्ता या जटिल प्रतिनायक हैं। काल्पनिक होते हुए भी, ये चित्रण हिंसक महिला आदर्शों को सूक्ष्म रूप से सामान्य बना देते हैं। जेनरेशन जेड के किशोर, जो पहले से ही लैंगिक पहचान और साथियों के दबाव से जूझ रहे हैं, इस बदलाव को सशक्तिकरण के रूप में आत्मसात कर सकते हैं। कई मामलों में, हिंसा को गलती से सत्ता तक पहुंचने का एक रास्ता मान लिया जाता है।

अकेलापन

टूटते संयुक्त परिवार, बिखरते बुजुर्ग

देश में 60% बुजुर्गों ने की समाज में उपेक्षा की शिकायत

भारतीय संस्कृति में बुजुर्गों को अनुभवों का खजाना माना जाता रहा है, मगर चिंताजनक है कि बुजुर्ग अब परिजनों और समाज की उपेक्षा, दुर्व्यवहार सहित कई तरह की समस्याएं झेलने को विवश हैं। भारतीय समाज में सदा संयुक्त परिवार को अहमियत दी जाती रही है, जहां बुजुर्गों का स्थान सर्वोपरि रहा है, मगर अब एकल परिवारों के बढ़ते चलन के कारण बुजुर्गों की उपेक्षा बढ़ रही है। दरअसल, समाज में अपनी हैसियत बड़ी दिखाने की चाहत में कुछ लोगों को अपने ही परिवार के बुजुर्ग मार्ग की बड़ी रुकावट लगने लगते हैं। ऐसे लोगों को सामाजिक तौर पर अपनी खुशियों में बुजुर्गों को शामिल करना शान के खिलाफ लगता है। ऐसी ही रूढ़िवादी सोच के कारण उच्च वर्ग से लेकर मध्यवर्ग तक में अब वृद्धजनों के प्रति स्नेह की भावना कम हो रही है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार, भारत में करीब साठ फीसद बुजुर्ग महसूस करते हैं कि समाज में उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। पचपन फीसद ने अनादर, सैंतीस फीसद ने मौखिक दुर्व्यवहार, तैंतीस फीसद ने उपेक्षा, चौबीस फीसद ने आर्थिक शोषण तथा तेरह फीसद ने शारीरिक शोषण की बात स्वीकार की। देश में संयुक्त परिवार प्रणाली धीरे–धीरे टूटने के कारण ही 'माता–पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण–पोषण और कल्याण अधिनियम 2007' अस्तित्व में आया था। इसी अधिनियम को ज्यादा समकालीन और अधिक प्रभावी बनाने के लिए संशोधन विधेयक, 2019 लोकसभा में पेश किया गया, जिसमें भरण–पोषण का आवेदन करने के बाद नब्बे दिन के भीतर निपटारे का प्रावधान है, जबकि पहले नोटिस के बाद नब्बे दिन तय थे। पुराने कानून में बुजुर्गों के साथ गलत व्यवहार करने पर कोई प्रावधान नहीं था, जबकि नए विधेयक में तीन से छह महीने तक जेल या 10,000 रुपए जुर्माना या दोनों हो सकते हैं।

एक गैर–सरकारी संस्था की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 47 फीसद बुजुर्ग आर्थिक रूप से अपने परिवारों पर निर्भर हैं, 34 फीसद पेंशन और नकद हस्तांतरण पर निर्भर हैं, जबकि सर्वेक्षण में 40 फीसद लोगों ने यथासंभव काम करने की इच्छा व्यक्त की। सर्वेक्षण में यह बात भी सामने आई कि 71 फीसद वरिष्ठ नागरिक काम नहीं कर रहे थे, जबकि 36 फीसद काम करने को तैयार थे। यही नहीं, 30 फीसद से ज्यादा बुजुर्ग तो विभिन्न सामाजिक कार्यों के लिए स्वेच्छा से अपना समय देने को तैयार थे, जिससे स्पष्ट है कि अगर पुरानी पीढ़ी की ऊर्जा को पर्याप्त अवसर मिले तो भारत की आर्थिक और सामाजिक तस्वीर उज्ज्वल हो सकती है।

एक गैर–सरकारी संगठन की रिपोर्ट के अनुसार, 2022 तक दुनिया में वरिष्ठ नागरिकों की आबादी 110 करोड़ और कुल आबादी की लगभग 14 प्रतिशत थी। 2050 तक यह आबादी बढ़कर 210 करोड़ और कुल आबादी की लगभग 22 प्रतिशत होने की संभावना है। एशिया में

बुजुर्ग आबादी 2050 तक 130 करोड़ हो जाएगी। भारत में वरिष्ठ नागरिकों की आबादी अभी करीब 14.9 करोड़ है और एक रिपोर्ट के मुताबिक, 2026 तक यह 17 करोड़, 2036 तक 23 करोड़ तथा 2050 तक 35 करोड़ यानी कुल आबादी की 20 फीसद से भी ज्यादा होने का अनुमान है। स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के अनुमान के मुताबिक, 2036 तक दक्षिण भारत के राज्यों में हर पांचवां व्यक्ति वरिष्ठ नागरिक की श्रेणी में होगा। बुजुर्ग आबादी में यह बढ़ोतरी निश्चित रूप से समाज और अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालेगी। ऐसे में

वर्तमान और भविष्य की पीढ़ी की उचित देखभाल के लिए उचित प्राथमिकताएं निर्धारित करना सरकार की जिम्मेदारी है।

हेल्प एज इंडिया' की नवीनतम रिपोर्ट 'वीमेन एंड एजिंग: इनविजिबल आर एंपावर्ड?' में मई से जून 2023 के दौरान 60–90 वर्ष की आयु वर्ग की 7911 महिलाओं को इस सर्वेक्षण में शामिल किया गया। संगठन ने विभिन्न सामाजिक आर्थिक श्रेणियों को शामिल करते हुए बीस राज्यों, दो केंद्रशासित प्रदेशों और पांच महानगरों में ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के प्रतिभागियों के बीच यह सर्वेक्षण किया और रिपोर्ट में खुलासा हुआ कि सोलह प्रतिशत वृद्ध महिलाओं को दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ा, जिनमें से करीब पचास फीसद महिलाओं को शारीरिक हिंसा और छियालीस फीसद बुजुर्ग महिलाओं को अपमान झेलना पड़ा।

चालीस फीसद प्रतिभागियों को भावनात्मक या मनोवैज्ञानिक शोषण का सामना करना पड़ा। सर्वेक्षण में शामिल कुल चालीस फीसद महिलाओं ने अपने बेटों को दोषी ठहराया, जबकि इकतीस फीसद ने अपने रिश्तेदारों और सताईस फीसद ने अपनी बहुओं को जिम्मेदार बताया। रपट में यह खुलासा भी हुआ कि दुर्व्यवहार के बावजूद अधिकांश बुजुर्ग महिलाओं ने डर के कारण पुलिस को इसकी सूचना नहीं दी। एक बेहतर भविष्य के लिए हम अपनी अगली पीढ़ी को निधि समझते हुए उसकी बेहतर परवरिश में कोई कमी नहीं छोड़ते। मगर तमाम जिम्मेदारियां निभाते–निभाते जब उम्र ढलने लगती और व्यक्ति शारीरिक तथा वित्तीय स्तर पर कमजोर होने लगता है, तो कई बार वह परिवार और समाज की उपेक्षा का शिकार होने लगता है। भले बड़े गर्व के साथ यह कहा जाता है कि भारत की सत्तर फीसद आबादी नौजवानों की है, जो देश के लिए एक बड़ी पूंजी है, लेकिन यहां चिंता का विषय यह भी है कि क्या यह आबादी हमेशा युवा बनी रहेगी? उम्र बढ़ना जीवन की नियति है, जिससे हर किसी को गुजरना पड़ता है। विभिन्न शोधों के अनुसार साठ वर्ष तथा उससे ज्यादा उम्र में उच्च रक्तचाप, मधुमेह, फेफड़ों की बीमारी, हृदय रोग आदि कई तरह की बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है। बढ़ती उम्र और घटती प्रतिरोधक क्षमता बीमारियों का एक प्रमुख कारक है।

केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय की 'बुजुर्गों की स्वास्थ्य समस्याएं' नामक एक रिपोर्ट में बताया गया है कि 25 फीसद भारतीय बुजुर्ग अवसाद में जी रहे हैं, 33 फीसद गठिया या हड्डी के रोग से ग्रस्त हैं, 40 फीसद को रक्ताल्पता है, गांवों में 10 और शहरों में 40 फीसद को मधुमेह है, 10 फीसद कम सुनने संबंधी समस्या से गुजर रहे हैं। गांवों में 33 फीसद तो शहरों में 50 फीसद को हाइपरटेंशन है, करीब 50 फीसद की नजर कमजोर है, 10 फीसद भारतीय बुजुर्ग कहीं न कहीं गिरकर अपनी कोई न कोई हड्डी तुड़वा बैठते हैं, तो 33 फीसद पाचन तंत्र के विकार से जूझ रहे हैं। पीढ़ी–अंतराल और जीवन–शैली में बदलाव के कारण बुजुर्ग व्यक्ति खुद में अलगाव और असुरक्षा महसूस कर रहे हैं। आर्थिक साम्राज्यवाद, भूमंडलीकरण, उदारीकरण और बढ़ते उद्योगीकरण ने भी आज बुजुर्गों को हाशिये पर धकेलने का काम किया है। टूटते संयुक्त परिवारों के कारण घर के बड़े बुजुर्ग एकाकी जीवन जीने पर मजबूर हो गए हैं। जिस घर में बुजुर्गों का सम्मान होता है, वह घर स्वर्ग से भी सुंदर माना जाता है। इसके बावजूद बहुत से परिवारों में बुजुर्गों को निरंतर अपने ही परिजनों की उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। ऐसे परि. जनों को इस बात का आभास कराया जाना बेहद जरूरी है कि आज के युवा भी आने वाले समय में वृद्ध होंगे। जीवन में हम आज जो भी हैं, अपने घर के बुजुर्गों की बदौलत ही हैं, जिनके व्यापक अनुभवों और शिक्षाओं से हम जीवन की कठिनाइयों को पार करने में सक्षम होते हैं। (साभार: www.jansatta.com)

गंभीर परिणाम

परिवार का टूटना राष्ट्र का टूटना है

मेरा... मेरा... और केवल मेरा। अब ये शब्द अधिसंख्य परिवारों में सुनाई देता है। कारण है संयुक्त सोच–संयुक्त रहन–सहन का अभाव। और परिणाम हुआ खण्ड खण्ड होता परिवार। मतलब एक संयुक्त राष्ट्र के लिए जिस ऊर्जा की जरूरत है उसका ह्रास। जब तक अधोमुखी बनी परिवार व्यवस्था उर्ध्वमुखी एवं राष्ट्रानुकूल नहीं बन जाती तब तक हमारी नाना समस्याओं का समाधान नहीं हो पाएगा। उल्टे नयी–नयी समस्याएं हमारे सम्मुख मुंहबाएं खड़ी होती जाएंगी। परिवार शब्द में केवल पति–पत्नी और उनकी संतान का ही समावेश नहीं होता। यह परिकल्पना इतनी सीमित नहीं है। पति और पत्नी का एक नाता होता है। किन्तु उनके साथ परिवार में भाई–बहन, माता–पिता, भाभी, चाचा, ताऊ, मामा, दादा–दादी, बहु, दामाद, ससुर आदि बीसियों नाते–रिश्ते भी होते हैं। एक ही मनुष्य को इनमें से अनेक नाते निभाने पड़ते हैं और तदनुसार व्यवहार करना पड़ता है। ये सब आप्तजन या परिवारजन होते हैं, उनका अपना एक समष्टि जीवन होता है।

इस समष्टि–जीवन में स्नेह, सहयोग, परस्पर पूरकता, दुर्बल घटकों के प्रति आत्मीय सहानुभूति, एक दूसरे के लिए कुछ त्याग करने की प्रवृत्ति, एक दूसरे के सुख–दुखों में सहभागी होने की स्वाभाविक तत्परता, अतिथि सत्कार की भावना आदि नाना गुणों का विकास अपेक्षित होता है। परिवार के लोग इन गुणों से युक्त हों तो परिवार के बाहर के समाज जीवन पर भी उनका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। हमारे यहां परिवार – व्यवस्था को सामाजिक सुरक्षा योजना का ही एक भाग माना जाता है। मनुष्य अपंग

हो गया, रोगग्रस्त हो गया, अस्थायी रूप में तो उसे नयी पीढ़ी पर ही निर्भर रहना पड़ता है। आवश्यक संस्कारों एव गुण संपदा के बिना यह सब नहीं हो सकता।

अतः समष्टि जीवन की सुव्यवस्थित रचना में परिवार–व्यवस्था की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। द्रव्यार्जन, कामतृप्ति, स्नेहाभिव्यक्ति की आंतरिक अभिलाषा, अपनेपन की सुखद भावना, व्यक्ति विकास आदि बातें पारिवारिक जीवन का प्राथमिक आधार होती हैं। इस घटक को नष्ट कर केवल शासन और प्रजा सम्बंध को शेष रखने का एक भी प्रयास आज तक कभी सफल नहीं रहा। ऐसा ही एक लक्षणीय प्रयास रूस में कम्युनिस्ट क्रांति के बाद किया गया। मनुष्य स्वभाव के सर्वथा विपरीत होने के कारण वह पूर्णतः असफल रहा। कुछ पाश्चात्य देशों में घड़ी का लंबक दूसरे ही दौर तक ले जाने का प्रयास हो रहा है। विचारकों को वह भी समाज की सुख–शांति को ढहा देने वाला दिखाई दे रहा है, और इसलिए चिंताजनक है।

कहना न होगा कि व्यक्ति स्वातंत्र्य की अतिरेकी, अव्यवहार्य एक अशास्त्रीय परिकल्पना से उत्पन्न वासना की तृप्ति के पीछे दौड़ते रहने वाली ही यह प्रवृत्ति है। जिस समय जो बात सुखकारी प्रतीत हो, उसे करते जाना इस प्रवृत्ति का मुख्य सूत्र है। संयम, सहिष्णुता, त्याग का वहां कोई मूल्य नहीं होता। व्यक्तिगत स्तर पर वासना–विकारों का ही बोलबाला होता है। सुसंस्करायुक्त बाल. संगोपन की अनास्था, परिवार में रुग्ण या अपंग हो गए सदस्यों की निराधार अवस्था, बड़े–बूढ़ों की देखभाल करने में आनाकानी आदि सामाजिक प्रश्न इसी में से उभरे हैं। हो सकता है कि व्यक्तिगत स्तर पर सम्बद्ध लोगों को जीवन का आनन्द लूटने का संतोष शायद मिलता हो, किन्तु इसे जीवन की सुसंस्कृत या सामाजिक स्थिरता के लिए पोषक कदापि नहीं माना जा सकता।

मानसिक तनाव के दुष्परिणाम का प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर भी पड़ने के कारण पश्चिम के सामाजिक विचारक अब सुखी एवं सुस्थिर परिवार जीवन की पुनर्रचना (रिहेबिलिटेशन ऑफ द फैमिली) की आवश्यकता का प्रतिपादन करने लगे हैं। पुराने समय में कृषि व्यवसाय के कारण संयुक्त परिवार प्रणाली भली–भांति चली थी और घर–घर में सांस्कृतिक परम्पराएं टिकी रही थीं। अब शिक्षण, व्यवसाय, नगरीकरण, अपर्याप्त आवास, आय की विषमता आदि कारणों से अलग घर बनाने की प्रथा अधिक सुविधापूर्ण लगने लगी है। समष्टि की दृष्टि से इससे भी बड़ी कमी यह आने लगी है कि द्रव्यार्जन एवं अपने सीमित परिवार के परे अन्य किसी काम पर ध्यान देने, उसके लिए समय, पैसा और श्रेय देने की भावना गृहस्थों तथा गृहणियों में समाप्त सी होने लगी है। परिणामतः सामाजिक कार्य के लिए लोग नहीं मिल पा रहे हैं।

(पाञ्चजन्य के 21 मार्च 1993 के अंक में प्रकाशित पं. दीनदयाल उपाध्याय का लेख)

BIHAR STATE MILK CO-OPERATIVE FEDERATION LIMITED.

COMFED

Sudha

COMFED
BIHAR STATE MILK CO-OPERATIVE FEDERATION LIMITED.
E-Mail: comfed.patna@gmail.com | **Toll Free No.:** 18003456199 | www.sudha.coop

कानून की नजर में

महिलाओं की आर्थिक आजादी नहीं हमारे संकुचित विचार बने बाधक

हाल ही में आयोजित दक्षिण क्षेत्रीय सम्मेलन 'परिवारः भारतीय समाज की आधारशिला' में सुप्रीम कोर्ट की न्यायमूर्ति बी.वी. नागरत्ना ने भारत में परिवार संस्था में हो रहे तीव्र परिवर्तन और उसके सामाजिक तथा कानूनी प्रभावों पर गहन प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि यह परिवर्तन कई कारकों से प्रेरित है, जैसे कि शिक्षा तक बढ़ती पहुंच, शहरीकरण, कार्यबल की गतिशीलता, और खास तौर पर शिक्षा के माध्यम से महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता में वृद्धि। कानूनी ढांचा भी इन सामाजिक परिवर्तनों में सहायक रहा है।

अपने संबोधन में उन्होंने परिवार को सभ्यता की आधारभूत संस्था बताया, जो हमारे अतीत से जुड़ाव और भविष्य की ओर सेतु का कार्य करता है। उन्होंने महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक मुक्ति को एक सकारात्मक परिवर्तन बताया और कहा कि यह केवल परिवार ही नहीं, बल्कि राष्ट्र की समग्र प्रगति में योगदान देती है। न्यायमूर्ति नागरत्ना ने इस बात पर चिंता जताई कि परिवारों में विवादों की बढ़ती संख्या न्यायालयों पर अत्यधिक बोझ डाल रही है। उन्होंने कहा कि यदि व्यक्ति दो प्रमुख दृष्टिकोणों को अपनाएं– अपने जीवनसाथी की सोच को समझें और आत्मनिरीक्षण करें– तो ऐसे कई विवादों से बचा जा सकता है। उन्होंने समझ और सम्मान के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा कि एक–दूसरे की भावनाओं और दृष्टिकोणों को अपनाना रिश्तों में संतुलन बनाए रख सकता है और कानूनी लड़ाइयों से बचा सकता है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा, ''वास्तविक चुनौती महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता नहीं है. बल्कि हमारे दृष्टिकोण और व्यवहारों का समय के अनुसार अद्यतन न होना है।'' उनका मानना है कि सामाजिक दृष्टिकोणों में बदलाव से न केवल परिवारिक विवाद कम होंगे, बल्कि बच्चों के पालन–पोषण की गुणवत्ता भी बेहतर होगी। न्यायमूर्ति नागरत्ना ने यह भी बताया कि हाल के वर्षों में तलाक और अलगाव के मामलों में भारी वृद्धि हुई है। उन्होंने कहा कि बीते एक दशक में लगभग 40 प्रतिशत विवाह विच्छेद या अलगाव में समाप्त हुए हैं, जिससे पारिवारिक अदालतों पर अत्यधिक दबाव पड़ा है और वर्तमान न्यायिक संरचना अपर्याप्त साबित हो रही है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए उन्होंने अनिवार्य पूर्व–मुकदमा सुलह और मध्यस्थता की वकालत की।

उन्होंने सुझाव दिया कि पारिवारिक अदालतों में प्रशिक्षित मध्यस्थों, विशेष रूप से सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को नियुक्त किया जाना चाहिए, जो कानूनी कार्रवाई से पहले विवादों को सुलझा सकें। इससे मामूली विवादों को विवाह–विच्छेद तक पहुँचने से रोका जा सकता है. जिससे बच्चों के हितों की रक्षा भी सुनिश्चित होगी। अंततः, न्यायमूर्ति नागरत्ना की टिप्पणी हमें यह सोचने पर विवश करती है कि परिवार और कानून के क्षेत्र में हमारी सामाजिक सोच, व्यवहार और व्यवस्थाओं को समय के अनुसार कैसे रूपांतरित किया जाए।

(साभारः lawtrend.in)

हम साथ–साथ हैं

अब भी देर नहीं हुई

एकता ही परिवार की ताकत है

जब दुनिया असहनीय और कठिन हो जाती है, तो हम अपने परिवार की ओर रुख करते हैं। हालाँकि, अगर परिवार भी असहनीय हो जाए, तो हम एकांतवासी की तरह जीने के लिए तरसते हैं। हमारा जीवन परिवार से शुरू होता है। जन्म के समय नग्न और अनावृत, परिवार हमें हर परिस्थिति में गले लगाता है और सहारा देता है। परिवार एक ऐसी जगह है जहाँ, असीम प्रेम के बंधन में बंधे, हम किसी भी परिस्थिति में आराम कर सकते हैं।

परिवार एक घनिष्ठ समुदाय होता है जहाँ हम लगातार एक–दूसरे को देखते, सुनते और टकराते रहते हैं।

हम साथ–साथ हैं

इस प्रकार, यहीं पर खामियाँ, गलतियाँ, पाखंड, विरोधाभास, झूठ और कुरूपताएँ खुलकर सामने आती हैं, ऐसी चीजें जो हम समाज में नहीं दिखाते। दूसरों के साथ हमारे व्यवहार को अक्सर घर पर नजरअंदाज कर दिया जाता है। इसलिए, परिवार आसानी से भटक सकता है और यह एक ऐसी जगह है जहाँ दिल आसानी से दुख सकते हैं। भारत सहित पूरी दुनिया में पारिवारिक ढाँचा टूट रहा है, और एकल परिवारों की संख्या लगातार बढ़ रही है।

एक युवक जो शादी नहीं करना चाहता क्योंकि उसके माता–पिता का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं लगता। उसके पिता पैसे कमाने के लिए संघर्ष करते हैं, घर पर अक्सर चिल्लाते रहते हैं और अक्सर उसकी माँ से झगड़ते रहते हैं। एक पुरुष के लिए, अभिमान आखिरी चीज बचता है। अगर वह अच्छा कमाता है, तो वह आत्मविश्वास से भरा रह सकता है, लेकिन अच्छा न कमा पाने की वजह से हार का एहसास होता है। ऐसी भावनाएँ शराब पीने वाले दोस्तों के सामने भी व्यक्त करना मुश्किल होता है, और घर ही अपनी भड़ास निकालने का सबसे आसान स्थान बन जाता है। वह चिल्लाता है, चीजें फेंकता है, और तरह–तरह की अभद्र भाषा का इस्तेमाल करता है, अपनी कमियों का रोना रोता है। अगर परिवार ऐसे पिता के बावजूद उसे समझ सके, अपना सके और आगे बढ़ सके, तो एक महान परिवार का जन्म होता है।

दुनिया के सबसे धनी व्यक्तियों में से एक, रॉकफेलर के पिता एक गैर–जिम्मेदार व्यक्ति थे, जिन्होंने परिवार को छोड़ दिया, दूसरी औरत के साथ रहने लगे और लोगों को अपनी शेखी बघारकर धोखा दिया। हालाँकि, रॉकफेलर की माँ एक धर्मनिष्ठ ईसाई थीं, जो अपने बेटे का हाथ थामे चर्च की सबसे आगे की सीटों पर प्रार्थना करती थीं। अपने बेटे को अपने पिता के पदचिह्नों पर न चलने देने के लिए दृढ़ संकल्पित, उन्होंने उसमें दृढ़ विश्वास पैदा किया। उनके मार्गदर्शन में, रॉकफेलर ने जीवन भर शराब और तंबाकू से परहेज किया और अपना व्यवसाय चलाया। हालाँकि उन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ा, लेकिन अपनी संपत्ति के बावजूद उन्होंने एक मितव्ययी जीवन जिया।

इस दुनिया में कोई भी परिवार परिपूर्ण नहीं होता। हर परिवार की अपनी समस्याएँ होती हैं, जो मानवीय अपूर्णता से उपजती हैं। राष्ट्रपति रूजवेल्ट, जिन्होंने महामंदी पर विजय प्राप्त की और द्वितीय विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों को विजय दिलाई, चुनाव से ठीक पहले पोलियो के कारण लकवाग्रस्त हो गए। उन्होंने अपनी पत्नी की मदद से इस निराशा पर विजय प्राप्त की। एलेनोर व्हीलचेयर पर बैठे अपने पति के हाथ–पैर बन गईं और जमीन पर उनके कानों की तरह अथक रूप से उनका साथ देती रहीं। एक आदर्शवादी प्रथम महिला और एक व्यावहारिक राष्ट्रपति के संयोजन ने अपार शक्ति का प्रयोग किया। जैसे मैं एक आदर्श इंसान नहीं हूँ, वैसे ही मेरे आस–पास कोई भी आदर्श नहीं है। इन मानवीय सीमाओं को समझना और दिलों को जोड़ना बेहद जरूरी है। एक पिता का दिल अनोखा होता है। एक व्यक्ति ने बताया, ''एक बार, मेरे बेटे को धूम्रपान करते हुए पकड़ा गया। एक करीबी दोस्त ने मुझसे कहा, तुम्हारा बेटा धूम्रपान करता है। मैंने उसे थोड़ी सलाह दी थी। मैं बहुत आभारी था।'' एक पिता कोई न्यायाधीश नहीं होता जो सही–गलत का फैसला सुनाए। वह अपने बच्चे की गलतियों को अपनी गलतियों की तरह देखता है और गहरा दुःख महसूस करता है, माफ करता है, प्रार्थना करता है और इंतजार करता है। यही एक पिता का दिल होता है। ''एक दिन, मेरे बेटे ने अपनी छोटी बेटी को एक गलती के लिए डाँटा। मैंने उससे कहा, बेटा, तुम्हें हर बार अपनी बेटी की गलती पर उसे डाँटना नहीं चाहिए। उसे माफ कर दो। क्या तुम जानते हो कि मैंने तुम्हें कितनी बार माफ किया है?''

इतिहास का सबसे बड़ा साम्राज्य बनाने वाले चंगेज खान ने अपने पोते कुबलई के शासनकाल में ही सबसे बड़ा क्षेत्रीय विस्तार हासिल किया। एडिसन की माँ, रॉकफेलर की माँ, डिक होयट और उनके बेटे, निक वुजिसिक के पिता, बिल गेट्स के माता–पिता, रोथ्सचाइल्ड परिवार, सोन ह्युंग–मिन और उनके पिता, किम यूना और उनकी माँ– सभी ने अपने परिवारों की बदौलत ही अपनी उपलब्धियाँ हासिल कीं। एक ऐसी दुनिया है जिसे अकेले रहकर हासिल नहीं किया जा सकता। इसलिए, एक एकजुट परिवार मजबूत होता है।

(साभार:medium.com)

बिहार सरकार
मध निषेध उत्पाद एवं निबंधन विभाग
नशे से होने वाले दुष्परिणाम
स्वास्थ्य की क्षति
आर्थिक हानि
घरेलू हिंसा -झगड़े
सड़क दुर्घटना
समाज में शर्मिंदगी
शिक्षा का नुकसान
किसी भी शिकायत एवं सूचना हेतु संपर्क करें हमारे टोल फ्री नंबर पर
15545
या
1800-345-6268
नशा नहीं, जीवन चुनें
मध निषेध उत्पाद एवं निबंधन विभाग बिहार द्वारा जनहित में जारी
Follow Us On:
#NashaMuktBihar

www.emanjari.com

इक्विटी फाउंडेशन

123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी

पटना, 13

equityasia@gmail.com

www.emanjari.com

06122270171

6207092051

7979772023

RNI Title Code: BIHBIL02442

© इक्विटी फाउंडेशन